मानव मन्दिर

10/1996

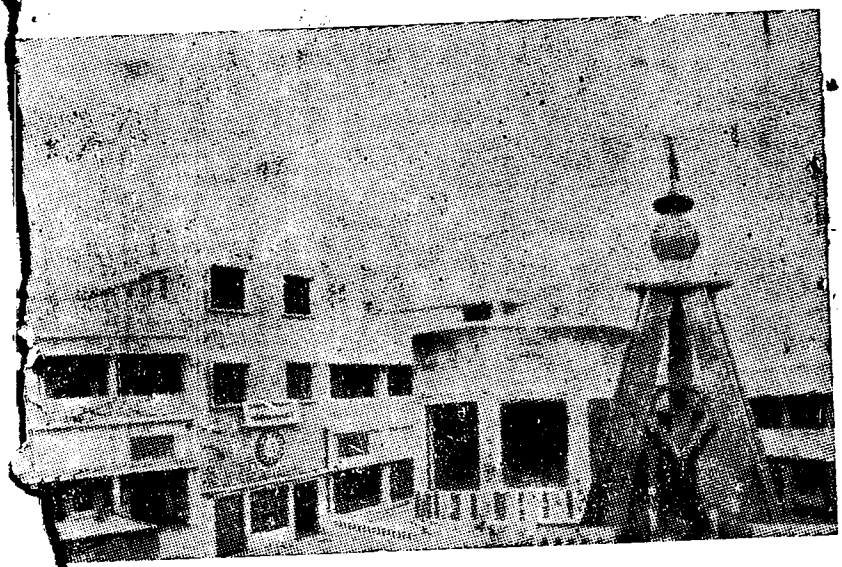

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

सुतैहरी रोड, होशियारपुर

द्वारा अमूल्य भेंट

परम दयाल पं. फकीर चन्द जी भल्ला

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Prem Prakash Sharma hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 Signature of Publisher

Printed and Published by : Prem Prakash Sharma at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur. for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर होशियारपुर में बगला मासिक सत्स॰
23-10-94 को होगा।

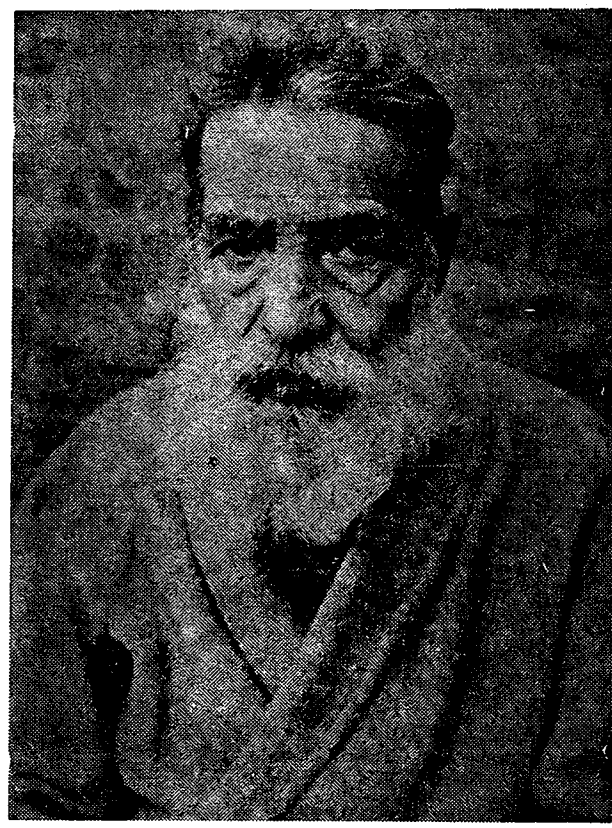

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand ji Maharaj

Param Sant Manav Dayal

Dr. I. C. Sharma ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

सम्पादक :
श्री प्रेम प्रकाश शर्मा

| वर्ष 21 | सोमवार 10 अक्टूबर, 1994 | संख्या 6 |

दसवां सन्देश

दु:ख और सुख की सच्ची पहिचान

हजूर दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज

सन्तों के मार्ग में दु:ख और सुख का विवेचन विशेष ढंग से किया गया है। यह तो हम सभी जानते हैं कि जब हम अन्तरीय और बाहरी कष्टदायक दशाओं के सम्पर्क में आते हैं, तो दु:ख का ज्ञान होता है और वह हमारे लिए दु:ख का कारण इसलिए बनती है, क्योंकि कष्टदायक दशाओं का हमारे शरीर और मन के साथ मेल नहीं होता। यदि वे हमारे अनुकूल हो जायें, तो कष्ट की जगह सुख और आनन्द हो जाए। परन्तु ऐसा होता नहीं और इसलिए हम दु:ख का अनुभव करते हैं। यदि हम अधिभौतिक, अधिदैविक और आध्यात्मिक, तीनों ही प्रकार के दु:खों के विषय में ध्यानपूर्वक सोचें और एक 2 पर

सन्तों के दृष्टिकोण के अनुसार विस्तारपूर्वक वर्णन करते चले जायें, तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जायेगा। इसलिए यहां पर जान बूझ कर केवल जीवन के दैनिक व्यवहार की ओर ध्यान दिया जा रहा है।

हम देखते हैं कि यदि हम किसी वस्तु में अपना ध्यान जमा दें, तो हमको प्रसन्नता और सुख मिलता है। यदि किसी कारण हमारा जमा हुआ ध्यान जबरदस्ती उस वस्तु या दृश्य से हटा लिया जाय, तो हमको प्रसन्नता होती है, दुःख होता है। अनुभव बताता है कि यह बात शत प्रतिशत ठीक है। इसलिए दुःख सुख की सच्ची पहिचान, केवल ध्यान की न्यूनता या अधिकता के सम्पर्क, और हटाव तथा घनिष्टता और दूर होने में छिपी रहती है। हमने किसी दृश्य को ध्यान से देखना शुरू किया, उसमें इतने मस्त हो गए कि उससे मिल कर एक हो रहे। वहाँ हम इतने प्रसन्न हो जाते है, इतने खुश हो जाते हैं कि हम अपने आप तक को भूल जाते हैं। अपने तन को भी सुध नहीं रहती। परन्तु यदि उस समय अचानक कोई आकर, हमारा ध्यान उससे हटा दे, तो हमारी क्या हालत होगी? हम बेहद दुःखी हो जायेंगे। हमारी सारी प्रसन्नता लुप्त हो जाएगी। जैसे इस समय हम दत चित्त हो कर लिख रहे हैं, आनन्द का अनुभव कर रहे हैं और किसी बात की हमें सुध ही नहीं। यदि अचानक कोई व्यक्ति आ जाय, तो विवश हो कर हमें लिखना छोड़ कर उससे बात करनी पड़ेगी, उसकी ओर ध्यान देना पड़ेगा। ऐसा करने से क्या होगा? हमें बहुत दुःख होगा। दुःख क्यों हुआ, क्योंकि हमारे ध्यान को

हटा दिया गया। इसलिए दु:ख और सुख का कारण कुछ नहीं हैं वह बाहर नहीं, हमारे अपने ही अन्तर में है। चित्त को एकाग्रता की भी श्रेणियां होती हैं और उन्हीं के अनुसार ही हमारे सुख और दु:ख को घटा बढ़ी की जा सकती है।

मनुष्य अपने ध्यान को जब जिससे जितना अधिक जोड़ता है, उसे उतनी ही प्रसन्नता होती है और जितनी कड़ाई या सख्ती के साथ उसके ध्यान को हटाया जाता है, उतना ही उसे दु:ख होता है। आदमी का ध्यान जब एक ओर लग जाता है, उस ध्यान मैं तल्लीन हो जाता है, इसलिए जब ऐसे बेसुध से आदमी के ध्यान को उससे जबरदस्ती हटा दिया जाए तो उसको दु:ख तो होगा ही। एक ज्योतिषी अपने हाथ में दूरबीन लिए हुए, आकाश में तारागणों के चक्कर को देख रहा हैं। वह अपने ध्यान में इतना तल्लीन है कि सिवाय आकाश के तारागणों के उसे कुछ प्रयोजन नहीं है। जबरदस्त धूप पड़ रही है, खूब गर्मी है, शोर शराबा भी है, परन्तु ज्योतिषी को किसी बात को ही सुध नहीं है, किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। वह उस जगह पर बैठा हुआ भी वहां नहीं है। उसका चित्त आकाश पर गड़ा है और तारागणों का समूह असकी आँखों के आगे है। अब आप ही अन्दाज़ लगाइए कि यदि कोई व्यक्ति अचानक वहां पहुंच कर ज्योतिषी के ध्यान को उससे जबरदस्ती हटा देता है, तो उसकी क्या दशा होगी। उसका हाल बुरा होगा। वह बहुत ही दु:खी होगा। सम्भव है कि इस दु:ख के परिणाम स्वरूप दूरबीन उसके

हाथ से गिर जाए और उसके मन तथा बुद्धि को चो पहुंचे।

एक पिता ने अपने ध्यान या विचार को अपने पुत्र से ही लगा रखा है। वह उसको देखता है, उसको सुनता है और उसके रहन सहन में सुख की खोज करता है। उसके सुख का मुख्य केन्द्र उसका पुत्र ही है। यदि अचानक उसके पुत्र को मृत्यु हो जाए, तो उस अज्ञानी पिता की क्या दशा होगी? उसका ध्यान पुत्र से हट जायेगा और वह ऐसे जबरदस्त दुःख का शिकार हो गा कि जिसका वर्णन करना कठिन है। जब तक पिता का ध्यान अपने पुत्र पर ही टिका हुआ था, उसके सुख का केन्द्र उसका पुत्र ही था, तो वह उस ध्यान से बहुत सुखी था परन्तु पुत्र की मृत्यु के साथ, उसका टिका हुआ ध्यान हट गया, उसका कोई केन्द्र नहीं रहा। अतः वह दुःखी हो गया, व्याकुल हो गया। वास्तव में सुख और दुःख स्वयं कोई वस्तु नहीं है। सुख और दुःख तो केवल मन के लगाव तथा हटाव का ही विषय है, जिससे हमें सुख दुःख का अनुभव होता है।

दत्तात्रेय अनसुइया के पुत्र थे। उन्होंने ध्यान तथा मन के लगाव का रहस्य भिन्न भिन्न पशु पक्षियों की दशा के अध्ययन से सीखा। बगुला, मुरगाबी आदि इस विषय में उनके गुरु बने।

छोटे बच्चे का मन बहुत ही जल्दी एक ओर लग जाता है, इसी ही कारण उसे खिलौनों से प्रसन्नता मिलती है।

शतरंज के खेल में मन बहुत ही लगता है, इसलिए शतरंज के खिलाड़ियों को शतरंज खेलने से विशेष प्रकार का आनन्द आता है। अतः आनन्द किसी वस्तु में नहीं है, केवल ध्यान की एकाग्रता में ही है। बच्चों का मन या ध्यान शीघ्र ही एक ओर लग जाता है और साथ ही सरलता से हट भी जाता है। इसलिए बच्चों को बड़ों की अपेक्षा कम दुःख होता है।

इसी ध्यान को संत मत में सुरत कहते हैं, और सुरत को दूसरे अर्थों में जीव समझा जाता है। आगे हम ध्यान की जगह सुरत का ही प्रयोग करेंगे।

ग्याहरवां सन्देश

ध्यान ही हमारे अन्दर सुरत अर्थात आत्मिक धार की अभिव्यक्ति है

हमारे शरीर के अन्दर कोई ऐसी वस्तु जरूर है जो शरीर के सम्पूर्ण अंग, नस नाड़ी को शक्ति देती है और हमको जीवित रखती है। हम केवल उसके कारण ही जीवित रहते और जीवित रह कर काम काज करते हैं। यह वस्तु हमारी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक बनावट की मूल बन कर धार के रूप में फैली हुई है और रक्त मांस आदि को गति दे रही है। परिभाषा से इसी का नाम ही 'सुरत' है। जब तक यह वस्तु देह में रहती है, शरीर का हर एक अंग उसके प्रभाव से अपना कार्य करता है, मगर ज्यों ही वह वस्तु शरीर से या शरीर के किसी अंग से या भाग से, अपनी धार को समेट लेती है, तब शरीर निरर्थक हो जाता है, गतिहीन हो जाता है। इन्द्रियां बेकार हो जाती हैं। न उनमें गर्मी सर्दी के भान को शक्ति रहती है

और न ही वह अपने आपको ठीक ढंग से रख सकती है, आंखों को देखना, कानों का सुनना, नाक का सूंघना, चर्म का छूना, दिल का धड़कना सभी बन्द हो जाता है। टांगें चल नहीं सकती, हाथ पकड़ नहीं सकते, जिह्वा बोल नहीं सकती। आप ने देखा न कि सब उसी एक ही वस्तु के ही आधीन रहती है। जब वह वस्तु ही नहीं रहती, तब कुछ भी नहीं रहता। उपनिषद कहते हैं, 'इसके जाते ही जिस प्रकार एक बलवान रथ के बाण के छिन्न भिन्न करने से कुल कील कांटें और पहिए बिगड़ जाते हैं, वैसे ही शरीर रूपी रथ की इन्द्रियां नष्ट हो जाती हैं, शक्ति जाती रहती हैं।

सुरत की धार अपनी अभिव्यक्ति, मानसिक या शारीरिक मण्डल में, धार के रूप में करती है। यह तो थोड़ा बहुत आपकी समझ में आ गया होगा कि यह धार जीवन को बनाये रखने तथा उसको नियमानुकूल चलाने में कितनी आवश्यक है। मगर अब समझना इस बात को है कि कभी कभी धार के रहते हुए भी हमें दुःख क्यों होता है? यह आप को बता दिया गया है कि धार की एकागता में सुख और उसके हटाव में दुःख होता है। एक आदमी बीमार है। रो रहा है। वह सुबह से लेकर शाम तक बेचैन रहता है, उसके कष्ट की सीमा नहीं है। क्या होता है? अचानक सहानुभूति दिखाने वाला एक व्यक्ति उस बीमार व्यक्ति के पास आ जाता है। वह सहानुभूति की बातें शुरू कर देता है, उसे प्यार भरे शब्दों में तसल्ली देता है। रोगी का चित बहलने लगता है, ठिकाने लगने

लगता है, वह रोग के विचार को भूल जाता है। एक क्षण में इतना बड़ा परिवर्तन! यह कैसे सम्भव हुआ? अब तो वह हंस भी रहा है। जो लोग असलियत को नहीं जानते, वह शायद यह परिणाम निकालें कि शायद रोगी ने पहले बीमारी का बहाना बनाया होगा, वह वास्तव में बीमार था ही नहीं। नहीं तो वह क्षण भर में ठीक कैसे हो गया? परन्तु बात ऐसी नहीं है। रोगी वास्तव में ही बीमार था। उसके क्षण भर के अन्दर परिवर्तन का एक रहस्य है जो समझने योग्य है। यह रहस्य उसके अन्दर है, बाहर नहीं। वह रहस्य यह है कि रोगी के दुःख का ध्यान, बार-बार दुःख के स्थान पर धार के रूप में जाता था और वहां से ख्याली या असली रूप में हटता रहता था, इसलिए दुःख होता था। धार के बार बार हटने या हटाये जाने से रोगी को अत्यन्त कष्ट हो रहा था। सहानुभूति प्रगट करने वाले व्यक्ति के आने से यह परिवर्तन हो गया। ऐसा परिवर्तन उस व्यक्ति ने किया कि रोगी के ध्यान की धार दुःख के स्थान से बिलकुल हट गई। उसका ध्यान अब अन्तरीय स्थान में नहीं रहा, इसलिए दुःख भी नहीं रहा।

एक लड़का छत से गिर गया, गहरी चोट आ गई, नस कट गई, हड्डियां टूट गई। जिस नस के द्वारा सुरत की धार, चोट वाले स्थान पर आती थी, उसको अब वहां ठहरने का अवसर नहीं मिलता, वह दुःखी है। परन्तु प्रकृति के नियमानुसार, बेहोशी की दशा में, जब वह धार चोट के स्थान को छोड़ कर मस्तिष्क की ओर खिच जाती है, तो दुःख

दर्द जाता रहता है। चाहे कितना ही रक्त बहे लड़के को दुःख नहीं होता। दुःख तो उस समय होता, जब सुरत की धार चोट के स्थान पर आकर हटाई जाती। अब तो वहां जब है ही नहीं हटेगी कैसे ? उसका रुझान तो अब मस्तिष्क की ओर है। चूंकि सुरत को धार थक्का पा कर मस्तिष्क की ओर चली गई, चूंकि वह कष्ट के स्थान को छोड़ गई, इसलिए कष्ट नहीं होता। प्रायः जब घाव गहरा होता है और घाव वाला आदमी व्याकुल होता है, तो एक अनुभवी वैद्य घाव वाले स्थान पर बेहोश करने वाली दवाई लगा देता है। क्यों ? क्योंकि इससे उस जगह के सुन्न हो जाने से सुरत की धार का आना बन्द हो जाता है और दर्द नहीं होता।

मानसिक क्षेत्र में भी यही तमाशा होता रहता है। शरीर में तीनस नाड़ियों की सवारी पर सुरत की धार आया करती है। मन के क्षेत्र में भी यही ख़्याल काम करता है। मन किसी न किसी रूप में किसी मनोरंजक ध्यान से सम्बन्ध जोड़ बैठता है और उसी ही के आस पास चक्कर लगाता है। परन्तु जिस समय उस पर कोई आपत्ति आ जाती है उसे किसी मित्र या सम्बन्धी की मृत्यु का समाचार मिलता है, तो, उसके परिणामस्वरूप उसकी सुरत को जबरदस्ती उस स्थान से हटना पड़ता है और उसे दुःख होता है। जिस प्रकार अधिभौतिक दुःख शरीर में हुआ करता है, उसी तरह अध्याधिमक दुःख मन के क्षेत्र में होता है। नियम वही एक है, हां धार की सवारियों में अन्तर अवश्य है। शरीर में तो नस नाड़ी काम करती है, परन्तु मन में वही काम विचार करता है। ये दशायें तो जाग्रत जगत की

है। स्वप्नावस्था में भी जब हमारा मन किसी सुखदायक कल्पित दृश्य को अपना केन्द्र बना लेता है और किसी दुःख-दायक घटना के कारण सुरत क धार को उससे ज़बरदस्ती हटना पड़ता है, तब दुःख होता है। ध्यान के क्षेत्र में एकता में सुख और प्रतिकूलता में दुःख है।

सुषुप्ति, समाधि या बेहोशी की दशा में, दुःख का अनुभव नहीं होता, उसका भी कारण यही है। कानून एक हो है। इस कानून को भली भांति समज लेने से ही सन्त-मत की महिमा का विश्वास होगा और सुरत-शब्द योग की असलियत समझ में आ जायेगी। यह सन्तों का योग है, जो सब यागों से श्रेष्ठ है। सूफियों के सभी साधनों में इसको सुल्तानुलजिकार अर्थात् सबसे बढ़ कर माना गया है।

मानवता युगधर्म

परमसन्त परमदयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

मानवता ही आज के समय में युगधर्म है और इसी का वर्णन इस पुस्तक में किया जायगा। चूंकि धर्म का अर्थ लोगों ने कुछ का कुछ समझ रखा है और भूल भ्रम में पड़कर अन्ध विश्वास से कोई किसी धर्म, पन्थ या सम्प्रदाय से बंधा हुआ है कोई किसी से, इसलिए पहले धर्म का अर्थ बता देना आवश्यक है। 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है और 'मन्' प्रत्यय है। 'धृ' का अर्थ है धारण करना, ठहरना और 'मन्' का अर्थ है जानना अर्थात् किसी सिद्धान्त या नियम को जानना और उसको धारण करना।

प्राचीन काल से अब तक मनुष्य को सुख शान्ति देने के लिए भारतवर्ष में ऋषियों, सन्तों तथा महापुरुषों ने समयानुसार देश, काल पात्रकी दृष्टि से भिन्न-भिन्न सिद्धान्त या नियम बनाए। उस समय के लिए वह अनुकूल रहे। किसी समय वैदिक धर्म का प्रचार था। अपने समय पर बौद्ध, वैष्णव धर्म आया। जब इन धर्मों में ह्रास हुआ तो कबीर

साहब, नानक साहब प्रगट हुए और संत मत का प्रचार हुआ। वह धर्म भी केवल वाचक ज्ञान रह गए। तदोपरान्त राधास्वामी दयाल प्रगट हुए। स्वामी दयानन्द ने फिर वैदिक धर्म का डंका बजाया मगर इनकी शिक्षा भी वाचक ज्ञान तक सीमित रह गई। और भी महापुरुषों ने अनेक धर्मों की स्थापना की, मगर इनके वास्तविक आचरण करने वाले तथा तत्व को समझने वाले नाम मात्र को रह गए। इनका परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में धर्म के तत्व को न समझकर अनेक धर्म सम्प्रदाय बन गए और उनके अनुयायी कट्टर पक्षपाती हो गए और धर्म की सच्ची समझ से वंचित रहे। एक धर्मावलम्बी दूसरे से घृणा और द्वेष करने लगा। परिणाम यह हो रहा है कि धर्म के नाम पर नित्य प्रति झगड़े होते रहते हैं।

आज का समय बिलकुल बदला हुआ है। खान-पान रहन-सहन में भारी परिवर्तन आ गया है। दिखावा और आवश्यकतायें बढ़ी हुई हैं। धर्माचरण ने भी दिखावे का रूप धारण कर लिया है। मनुष्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित अनुचित रूप से धन कमाने में चिपटा हुआ है, भ्रष्टाचार बढ़ा हुआ है, दुखी और अशान्त है। पश्चिमी देशों में अतुलित सम्पत्ति है। अमरीका में लोगों के पास धन की कमी नहीं है मगर वहां भी अशान्ति का बोलबाला है।

यह दशा क्यों है? क्योंकि मनुष्य को यह ज्ञान नहीं है कि तू कौन है। दूसरे शब्दों में आत्म ज्ञान या रूहानियत

का शिक्षा नहीं रही। सन्त मत जो आत्म ज्ञान की शिक्षा देने आया था उसमें भी असलियत लोप हो गई। आत्म स्थिति वाले नहीं रहे। यदि हैं भी तो नाम मात्र को। अधिकतर मान बड़ाई और प्रलोभन में आ गये या डेरे, धामों के गद्दों के फंदे में फंस गए।

मानव जाति आज भौतिकवाद में फंस गई है। प्रतीत तो यह होता है कि मानव ने बड़ी उन्नति की है कि चन्द्रमा तक पहुंच गया है। एक एटमबम से संसार का बिध्वंस किया जा सकता है मगर चारों ओर अचान्ति का वातावरण छाया हुआ है। मानव जाति आज दुःखी है। इसलिए समय के अनुसार सच्चाई का मार्ग बताने तथा उसके सिद्धान्त वर्णन करने की आवश्यकता हुई जिससे लोग सुख शान्ति प्राप्त कर सकें।

❋ ❋

सच्चाई का मार्ग

वह सच्चाई का मार्ग क्या है? आज के समय के लिए परिस्थितियों तथा वातावरण के अनुसार जबकि मानव जाति भौतिकवाद और मानसिक बाद में फंसकर अपने आपे या आत्म ज्ञान को भूल गई है उसके लिए सच्चा मार्ग 'मानवता' ही है अर्थात् मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बने। इसका अभिप्राय यह है कि भौतिक और मानसिकवाद की

त्रुटियों को पूरा किया जाय।

× × ×

मानवता का नया नाम क्यों ?

सम्भव है लोग यह कहें कि यहां तो पहले ही से अनेकानेक धर्म सम्प्रदायों के नाम मौजूद हैं फिर इस नए नाम की आवश्यकता क्यों हुई ! कोई पुराना नाम ही क्यों नहीं रहने दिया गया।

'मानवता' कोई नया धर्म तो नहीं है। हां, इतना अवश्य है कि स्पष्ट रूप से इस शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। पहिले भी इसका वर्णन कहीं कहीं मिलता है।

कबीर जी ने कहा है :—

मानव बनकर ना जिया,
जिया तो डाँगर ढोर।

महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज ने भी अपनी पुस्तक 'लाइट आन आनन्द योग' में लिखा है :--(अर्थात् हर प्रकार मनुष्य बनो)। कुल धर्म सम्प्रदाय एक विशेष समुदाय तक ही सीमित हो गए हैं और हर एक को दूसरे के धर्म सम्प्रदाय [illegible] घृणा और द्वेष है, इसलिए किसी पुराने नाम को हर एक

वर्ग या सम्प्रदाय वाले मानेंगे नहीं इसलिए भी 'मानवता' शब्द उचित है।

आज के समय में आत्म ज्ञान की शिक्षा केवल वाचक ज्ञान बनकर रह गई है और मानव जोति अज्ञान के कारण अपने 2 सम्प्रदाओं से बंधी हुई है इसलिए एक को दूसरे से घृणा और द्वेष है। इसका परिणाम यह हुआ जो सन् 1947 ई. में भारत के विभाजन के समय रक्तपात के रूप में देखने को आया। हजारों घर नष्ट हो गए, सम्पतियां लुट गईं व हजारों बेवायें और अनाथ बच्चे बिलखते रह गए। इस दुर्दशा से मुझे बड़ा आघात पहुंचा और मानव जाति को सत मार्ग बताने के लिए प्रार्थना करते करते समाधि में चला गया। कई घण्टे के बाद जो चेत हुआ तो यही प्रेरणा हुई कि मनुष्य वास्तविक रूप से मनुष्य बनें। उसी समय मैंने 'मनुष्य बनो' को युगधर्म माना और 'मनुष्य बनो' का झंडा अपने मकान पर लगाया। उन्हीं दिनों में 'मनुष्य बनो' नामी पुस्तक घी लिखी जो हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुकी है। इसलिए 'मानवता' के शब्द को ही मैंने उचित समझा है और इसी के प्रचार का कार्य करता हूं।

× × ×

मानवता मन्दिर

इस प्रचार कार्य के करने के लिए यह महसूस हुआ कि एक स्थान ऐसा अवश्य होना वाहिए जहां लोग आ सकें,

बैठ सकें और सत्संग का लाभ उठा सकें। इसी दृष्टि से निष्काम, निःस्वार्थ भाव से 'मानवता मन्दिर' की स्थापना होशियारपुर में की गई और उसके प्रबन्ध के लिए एक ट्रस्ट नियत कर दिया गया। मुझको उसके कोई लाभ लपेट नहीं है।

मानवता

धर्म की व्याख्या जिस ढंग से प्राचीन धर्म संस्थापकों ने की है उसको ढकोसला माना जाता है। उस शिक्षा को लोग क्रियान्वित होने वाला नहीं मानते। आज विज्ञान का युग है। क्यों और 'क्या' का प्रश्न हर बात में उठाया जाता है। उसकी सच्ची समझ के देने वाले भी नाम मात्र को हैं। मानव भी भौतिकवाद में फन्स गया है। पहले महापुरुषों ने जो धर्म के नियम बनाये थे वह उसी समय के लिये उपयुक्त थे। यह नहीं कि वह गलत थे मगर आज लोग उस मार्ग से वास्तविक रूप से विमुख हो रहे हैं। इसलिये मैं युगधर्म मानवता की व्याख्या नये ढंग से अपने शब्दों में सरल भाषा में कर रहा हूं और वह भी विज्ञान और प्रकृति के नियमों के आधार पर ताकि किसी भी धर्म और सम्प्रदायवादी को इसके मानने में कोई संकोच या हिचकिचाहट न हो, धार्मिक भेदभाव दूर हो जायें तथा मानव जाति सुख शान्ति का जीवन व्यतीत कर सके।

× × ×

मनुष्य क्या चाहता है ?

प्रत्येक मनुष्य समझ बूझ आ जाने पर यही चाहता है कि वह सुख शान्ति प्राप्त करे, उसकी आवश्यकतायें पूरी होती रहें और दु:खों से निवृति हो। इसके लिए नियमित सिद्धान्तों, उसूलों या नियमों पर चलना पड़ता है। इन्हीं नियमों को धर्म कहा जाता है। इसी विषय पर मैं वर्णन करूंगा ताकि मनुष्य को गलत धारणायें और मान्यतायें दूर हो जायें।

मानवता की पूर्ण अवस्था

केवल वह मनुष्य जो देह, मन और आत्मा को समय के अनुसार ढालकर अपने व दूसरों के लिए लाभकारी हो सकता है, पूर्ण मानव है। जो केवल आध्यात्मिक (रूहानी) मनुष्य है वह पूर्ण मनुष्य नहीं है। जो केवल बुद्धिमान है वह भी पूर्ण पुरुष नहीं है। जो केवल शरीर तक ही सीमित है वह भी पूर्ण नहीं है। पूर्ण वह है जिसमें आत्मा, मन, देह की समस्त शक्तियां समय और आवश्यकता के अनुसार अपने लिए या दूसरों के लिए सुखदाई हो सकती हैं। यह मेरा निज अनुभव है। लोग पूर्ण समझते हैं आत्मा को या निज स्वरूप (ज़ात) को। वह तो बीज रूप है जैसे आम की एक गुठली है उसमें एक आम का पूरा वृक्ष है जिसमें करोड़ों आम व पत्ते मौजूद हैं मगर उस आम की गुठली से तुम्हारी तृप्ति नहीं हो सकती। तृप्ति जब होगी जब वह गुठली आम का वृक्ष बन जायगी। इसलिए कोई पूर्ण है तो केवल वह मनुष्य है जो देह, मन, आत्मा के खेल में

रहता हुआ अपने वह्नरों के सुख का कारण बन सकता है। यही मेरा आत्मा से भाव है।

× × ×

मनुष्य कौन है ?

साधारणतया मनुष्य की दृष्टि इस स्थूल देह, स्थूल जगत तथा भौतिक पदार्थों तक ही सीमित हो गई है। वह इसी को सब कुछ समझ कर इसमें इतना फंस गया है कि मन और आत्मा की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में फंस कर बुरे भले कर्म करता रहता है।

वास्तव में इस देह को ही मनुष्य नहीं कह सकते। इस शरीर के तीन भाग हैं : स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर यह तीनों शरीर मिल कर काम करते हैं और इन तीनों में इतनी घनिष्टता है कि एक को दूसरे से अलग करना कठिन है। इन तीनों के मिले बिना कोई काम मनुष्य कर नहीं सकता। इसके उपरान्त एक व्यक्ति या परम तत्व और भी है जो ईस देह में रहता हुआ इन सब के कार्यों का साक्षी है। इन तीनों की व्याख्या इस प्रकार है :

स्थूल शरीर : यह स्थूल देह जो प्रत्यक्ष में दिखाई पड़ती है। यह मनुष्य शरीर का एक भाग है। केवल देह

को मनुष्य नहीं कह सकते। स्वप्न और सुषुप्ति में यह निष्क्रिय हो जाता है फिर भी कोई शक्ति है जो काम करती रहती है।

सूक्ष्म शरीर : इस स्थूल देह में एक सूक्ष्म शक्ति मन है जो दिखाई नहीं पड़ता मगर जाग्रत और स्वपन तक में इसका कार्य होता रहता हैं। इस मन के बिना शरीर कोई कार्य नहीं कर सकता। पहिले हर एक काम का विचार मन में आता है और वहां से वह मन शरीर को गति देता हैं और वह काम करने लगता है।

इस मन का अनुभव स्वपनावस्था में किया जा सकता है जब वह अपनी अनेक प्रकार की रचना करता है मगर जागने पर उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। हां थोड़ा बहुत स्वप्न के दृश्यों की याद रह जाती है। मगर गहरी नींद में जाकर मन भी कोई कार्य नहीं करता और न कर सकता है। अतः यह मन भी किसी शक्ति के आधीन है जिससे इसको शक्ति मिलती है।

कारण शरीर : यह बीज रूप है। यह आत्मा है। वह ज्योतिस्वरूप है, प्रकाश है। मन और देह की रचना प्रकाश से ही होती है। इसे यों समझलो कि सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर न आये तो कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती। इस शक्ति, तत्व या ज्योति से ही रचना होती है। इसका अनुभव गहरी नींद में जाकर मनुष्य करता रहता है। गहरी नींद से जागने पर मनुष्य यह प्रतीत करता है कि आज

बड़े आनन्द की नींद आई ।

उस अवस्था में आनन्द ही आनन्द है कोई दुःख सुख क्लेश शोक आदि नहीं है । यही कारण है कि प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक काम आनन्द या खुशी के लिए करता है। वह उस खुशी या आनन्द को स्थूल पदार्थों में टटोलता है। असली आनन्द कहां है और कैसे प्राप्त होता है इसका उसको ज्ञान नहीं है। सत स्थूल देह है, चित चिन्तन मनन करने वाला सूक्ष्म शरीर है, और आनन्द देने वाली शक्ति आत्मा है ।

बुद्धि से तो यह बात मनुष्य समझ सकता है कि मैं देह नहीं हूं, मगर केवल समझ लेने से वह आत्म अवस्था में ठहर नहीं सकता। देहाभिमान छूटता नहीं। अतः आत्म अनुभव की आवश्यकता है ।

इसके अनुभव या ज्ञान हो जाने के बाद मेरे अमली (क्रियात्मक) जीवन में यह आया है कि शब्द और प्रकाश या आत्मा में रहने वाला महात्मा जब शरीर और मन में आयेगा वह जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों का सहयोग पाने या उन पर आश्रित होने के लिए विवश होगा। इसलिए मैंने मानवता का शब्द गढ़ा है कि चाहे कोई आत्मनेष्टी हो, योगी हो, ध्यानी हो, ज्ञानी हो, सन्त या परम सन्त हो, इसके लिए सन्सार में रहते हुए, शरीर और मन रखते हुए यह आवश्यक है कि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा मानव के हित के लिए

काम करें। यह आत्म-अनुभव केवल विशेष से आदमियों की मानसिक और आत्मिक शक्तियों को शान्ति देना या आनन्द देना है, परन्तु मैंने इस आत्मा, परमात्मा ब्रह्म, पारब्रह्म इन सब श्रेणियों में क्रियात्मक (अमली) रूप में जाकर देखा हैं शान्ति नहा हैं। यह केवल एक अहं भाव है। आत्मानन्द भी एक अहं भाव है। समय आता है जब प्रकाश और शब्द में रहने वाले महापुरुष भी ऐसे गिर जाते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं।

मैं मानवता इसको समझता हूं जो सत, चित और आनन्द के प्रभावों में नहीं फंसता किन्तु इस सत चित-आनन्द के प्रभावों को एक खेल समझता है। जब यह ज्ञान हो जाता है तो उसकी विदेह गति या जीवन मुक्त अवस्था आ जाती है। वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूप को समझता हुआ इनमें फंसता नहीं। यह मानवता की चोटी है। सत्संग और साधन के बाद अनुभव होने पर जीवन में अमलीरूप से रहना मानवता है। फिर वह देह, मन और आत्मा से अपने और दूसरों के कल्याण के लिये काम करता है।

मनुष्य क्या है

वास्तव में मनुष्य चेतन का एक बुलबुला है जो इस शरीर में आकर खेल करता है। जब तक उसको अपना ज्ञान नहीं होता, वह दुख सुख के प्रभावों से बच नहीं सकता।

इस ज्ञान के प्राप्त करने के सम्बन्ध में यह आवश्यक हैं कि वह शारीरिक दृष्टिकोण से, शारीरिक जीवन के दृष्टिकोण से तथा भाव विचार धार्मिक और पथ-प्रदर्शकों तथा आचार्यों के सम्बन्ध को दृष्टिकोण से जो उसने अपने आप को बांधा हुआ है और इसको ही ठीक समझा जाता है, इसको जाने कि वह कहां तक ठीक हैं इसलिए इसकी संक्षेप में व्याख्या करना आवश्यक है ताकि उसका यह भ्रम मिट जाय और आगे को ओर कदम बढ़ा सके।

मनुष्य शारीरिक दृष्टिकोण से

प्रत्येक मनुष्य अपने आपको कुछ न कुछ समझने पर पर विवश है। कोई अपने आपको हिन्दू समझता हैं, कोई मुसलमान, सिक्ख, जैन, बुद्ध, इसाई इत्यादि। यह भेद भाव धर्म के आधार पर हैं। इसके अतिरिक्त देश में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में भी पार्टियां और बड़े बन्दियां होती हैं। इसके परिणामस्वरूप कोई अपने आपको कांग्रेसी, मुसलिम लीगी, सोशलिस्ट, कम्यूनिस्ट इत्यादि समझ रहा है और इन पार्टियों और धर्मों से गुट बद्ध हो रहा है जो उसे पक्षपाती और तंग दिल बनाए हुये हैं। इसके कारण वह व्यक्ति सच्ची स्थिति से नितान्त अनभिज्ञ है।

मनुष्य का शरीर जोकि जन्म के समय बहुत छोटा सा होता है पहिले मां के दूध से फिर खुराक खाने से

से बढ़ता है और बलिष्ट होता हुआ मनुष्य का पूर्ण आकार ग्रहण कर लेता है। सिद्ध हुआ कि शरीर की लम्बाई चौड़ाई और मोटाई खुराक से बनती है, जो कि देश की भूमि में पैदा हुई है। दूसरे अर्थों में मनुष्य का शरीर मां के पेट से बाहर आने के पश्चात देश की खुराक से बढ़ता है और जीवित रहता है। यदि भोजन न मिले तो उसका पालन-पोषण तो एक तरफ वह तो नष्ट हो जायेगा। अब देखिये कि मनुष्य का गर्भाधान कुछ वीर्य के कीड़ों से होता है। यह शक्ति पिता के अन्दर देश के खाद्य पदार्थों से पैदा हुई और खाद्य सामिग्री से यह वीर्य बना है जिसमें यह कीट पैदा होता है। इससे सिद्ध हुआ कि हमारा शरीर देश के खाद्य पदार्थों से न केवल पलता है किन्तु बना हुआ भी उसी का है। अर्थात् देश की भोजन सामग्री ही ने एक प्रकार से बदल कर मनुष्य के शरीर की आकृति ग्रहण कर ली है जो हिन्दू है न मुसलमान, न सिक्ख, न ईसाई आदि-आदि।

इससे यह सिद्ध होता है कि तुम्हारा शरीर तुम्हारे पास देश की धरोहर है। यदि शारीरिक रूप में तुम कोई घमण्ड या अहंकार कर सकते हो तो यह कि तुम अमुक देश के निवासी हो। यह असली और सच्चा अहंकार शारीरिक ढंग से है। इसके होने से तुम में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और घमण्ड का नाम निशान भी नहीं रह सकता, क्योंकि यह देश ही वास्तव में हमारी शारीरिक दृष्टि से सच्ची मां है और इसके बच्चे तुम्हारे सच्चे भाई हैं।

मनुष्य शारीरिक जीवन के दृष्टिकोण से

अब सुनो जीवन क्या है? हमारा जीवन पिता के वीर्य

से हुआ। इसमें हम कीड़े थे। इस कोड़े में क्या चीज थी? तुम कहोगे जीवन। जीवन कहाँ से आया? कैसे आया? इसका उत्तर धर्मावलम्बी पृथक 2 ढंगों से देते हैं। यद्यपि इनके उत्तर सच्चे हैं परन्तु वर्णन शैली से मतभेद के कारण सन्देह और भ्रम पैदा होते हैं। इसलिए जो कुछ सोचा जाता है इस पर मनुष्य का पूर्ण विश्वास नहीं होता है। सुनिये! वह कोड़ा वीर्य से बना है। वीर्य रुधिर से और खाद्य पदार्थों से बना है।

वह खाद्य-पदार्थ पृथ्वी से उत्पन्न हुए। जब तक कि सूर्य और तारागणों की किरणें पृथ्वी पर न गिरें, पृथ्वी खाद्य-पदार्थ पैदा नहीं कर सकती। इसलिए सूर्य और तारागणों की किरणें जीवन हैं। यह जीवन भिन्न-भिन्न दशाओं में होता हुआ हमारे शरीर में ठहर कर हमको चलायमान रखता है या जीवित रखता है। यह ताप और प्रकाश तमाम सन्सार का जीवन है।

हिन्दू शास्त्रों ने दुनियां के पैदा करने वाले का नाम ज्योति स्वरूप या ईश्वर रक्खा हुआ है। यह ज्योति स्वरूप क्या हैं? वह ताप, प्रकाश और तेज का भंडार है।

वर्तमान विज्ञान भी इस सूर्य से परे एक महान सूर्य तक पहुंचा है। यदि तुम अधिक प्रमाण चाहते हो तो अपनी मृत्यु और जीवन को ध्यान से देखो। ज्योंहि शरीर की अग्नि समाप्त हुई कि मनुष्य मर जाता है। यदि शरीर में गर्मी है तो मनुष्य जीवित है। अपने आपको मस्तिष्क में इकट्ठा करो। तुम्हारे अन्दर प्रकाश प्रगट होगा। अधिक

क्या कहूं। इतना ही काफी है। यह हमारा तुम्हारा शारीरिक जीवन ताप, प्रकाश और तेज ही है। यह भिन्न-2 तारागणों और सूर्य किरणें हैं जो मिश्रित दशा में प्रत्येक शरीर के अन्दर कार्य करती हैं। अतः शारीरिक जीवन के दृष्टि कोण से हम सब एक हैं।

मनुष्य भाव विचार के दृष्टि कोण से

यह आवश्यक है कि मनुष्य को यह ज्ञान हो कि विचार क्या वस्तु है। कैसे उत्पन्न होता है और क्यों उत्पन्न होता है।

देह अलग वस्तु है, जीवन अलग वस्तु है और विचार, भाव अलग। संगठित रूप से इन तीनों के खेल का नाम जीवन कहलो तो कोई हर्ज नहीं। (दृष्टि मन्तव्य की ओर रहे न कि शब्दों की ओर) विचार मनुष्य के भावों का स्पष्टीकरण है। भाव विचारों के कारण उत्पन्न होते हैं। हर एक अणु, परमाणु अपनी घनात्मक व ऋणात्मक शक्ति रखता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक शरीर में गुण, कर्म और स्वभाव मौजूद रहते हैं।

प्रत्येक शरीर चाहे वह छोटा हो या बड़े से बड़ा हो उसके अन्दर से घनात्मक शक्ति या फोर्स की धारें, लहरें या किरणें हर समय निकलती रहती हैं जिसको विज्ञान भी मानता है और इस शरीर के इर्द गिर्द घेरा या मण्डल बांधे रहती हैं। जब एक शरीर दूसरे शरीर के घेरे में आता है

तो दोनों शरीरों या अधिक शरीरों की फोर्स आपस में टक्कर खाती हैं जिसके कारण इनमें परिवर्तन होता है। तब हर शरीर के अपने गुण कर्म स्वभाव या फोर्स में नई प्रकार की लहर पैदा होती है। इसका नाम भाव है। इन भावों को अभिव्यक्ति (इजहार) विचारों से शारीरिक गति के रूप में हुआ करती है।

मनुष्य का दिमाग जो बहुत ही सूक्ष्म पदार्थ का बना हुआ है, तमाम शरीर के साथ बहुत ही बारीक-बारीक नसों और नाड़ियों से पिरोया हुआ है। जब एक शरीर के भाव दूसरे शरीरों पर देखने, सुनने और छूने से पड़ते हैं तो वह दिमाग उन प्रभावों को ग्रहण कर लेता है और उसका दिमाग प्रभावित होता है और उसके गुण, कर्म स्वभाव में परिवर्तन पैदा करता है। इन प्रभावों और परिणामों को कोई एक देखता है जो न तो शरीर है न विचार न जीवन। वह कोई एक शरीर विचार और जीवन से अलग है। इसको तवज्जह या सुरत कहलो। अब समझ गए होंगे कि भाव विचार क्या हैं। चूंकि गुण, कर्म, स्वभाव या घनात्मक व ऋणात्मक शक्ति दूसरे शरीर के गुण, कर्म, स्वभाव को प्रभावित करते हैं इसलिए विचार और भावों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है।

प्रत्येक शरीर के गुण, कर्म और स्वभाव या उसकी घनात्मक व ऋणात्मक शक्ति एक दूसरे पर प्रभावित होकर उसके विचारों में परिवर्तन पैदा करती

रहती है। प्रत्यक शरीर पर दूसरे शरीर का असर हुआ करता है। उनका प्रभाव और परिणाम पृथक-पृथक हुआ करता है। एक ही वाह्य घटना के वाह्य प्रभाव तो एक ही होते हैं मगर उनका प्रभाव हर शरीर पर भिन्न-भिन्न हुआ करता है। जैसे किसी जगह बाढ़ से या गाड़ियों की टक्कर से कुछ आदमी डूब गए या मर गए। जिन्होंने देखा या सुना, उनमें से किसी ने घायलों या मुर्दों के माल को लूटा, किसी ने उनकी मरहम पट्टी की, किसी ने सोचा कि ऐसा क्यों हुआ इत्यादि। ऐसा क्यों होता है क्योंकि प्रत्येक की प्रकृति अलग अलग होती है। यह प्रकृति का नियम है। इसलिए आपस में भिन्नता का होना प्राकृतिक है।

शिव संकल्प और समाधि

सत्संग

परम पुरुष पूर्ण धनी
सन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस
हज़ूर मानव दयाल

डा. ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

(मानवता मन्दिर, होशियारपुर 17-3-88)

शब्द

न मन में हो भव भय,
न आशा किसी की ।
न चिंता न दुविधा,
न त्रासा किसी की ॥
न अभिमान मद मान,
का भाव भावे ।
न द्वेष ईर्ष्या मेरे,
चित्त को सतावे ॥

कमल पद की लूं,
छाँह में नित बसेरा ।
मेरे मन के भीतर,
रहे तेरा डेरा ॥
भजन ध्यान सुमिरन,
करूं चलते फिरते ।
चलूं पंथ पर तेरे,
मैं गिरते पड़ते ॥
कहूं राधास्वामी,
सुनूं राधास्वामी ।
लिखूं राधास्वामी, गुनूं राधास्वामी ॥

राधास्वामी !

आज हमने परम दयाल जी महाराज का जो सत्संग सुना, उसमें दो बातें खास तौर पर बार-बार उन्होंने दुहराई हैं, एक तो शरीर को स्वस्थ रखना और दूसरे मन को शिव-संकल्प से शुद्ध रखना । ये दो बातें बहुत जरूरी हैं ! उन्होंने अपने अनुभव से मिसालें भी दी हैं कि दाता दयाल ने उनको 'दो जहान का पीर' कहा है। दो जहान क्या है ? एक तो हमारा शरीर का पहलू और दूसरा हमारा मन का पहलू। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए महाराज जी ने ब्रह्मचर्य पालन करने पर बड़ा जोर दिया है ।जो प्रौढ़ अवस्था होने से पहले अपना ब्रह्मचर्य खो देता है,उसे रोग भी लग जाते हैं, और उसे कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती । इसकी बहुत सी मिसालें वह दिया करते थे। वह कहते थे, अगर तुम अपनी शारीरिक दुनिया को सुखी बनाना चाहते हो, तो शरीर की तन्दरुस्ती सबसे पहले जरूरी है। अगर

शरीर स्वस्थ नहीं है, तो किसी किस्म की योग-साधना नहीं हो सकती और न ही सन्सार का कोई काम किया जा सकता है। महाकवि कालिदास ने इसी सच्चाई को अपने काव्य में कहा है 'शरीरम् आद्यं खल्विदं साधनम्'। पार्वती ने छोटी उम्र में घोर तपस्या करने का निश्चय किया था, क्योंकि उनके गुरु नारद मुनि ने कह दिया था "तुम्हारे पति शंकर ही हो सकते हैं, तुम उनके लिए तपस्या-आराधना करो।" अतः पार्वती ने तप करने का निश्चय कर लिया था। इस पर उसकी माता ने कहा, "पार्वती तेरा शरीर अति कोमल है तुझे रोग-व्याधि हो सकती है।" महाकवि कालिदास ने कहा : 'शरीरम् आद्यं खल्विदं साधनम्' चाहे समाज धर्म हो या वर्णाश्रम धर्म हो, किसी भी धर्म का पालन करने के लिए सबसे पहले शरीर को स्वस्थ होना चाहिए। महाराज जी की बात की मैं पुष्टि करता हूं, क्योंकि हमारे ऋषियों ने भी जो विज्ञान बनाया है, उसमें इस बात की पुष्टि होती है। दुनिया में रहने के लिए, हमारे जीवन के चार मकसद लक्ष्य हैं, चार मूल्य हैं, जो हमारे शरीर, मन, आत्मा और सुरत से जुड़े हुए हैं। ऋषियों ने बहुत गहराई से सोच-समझ कर ही जीवन को चार आश्रमों में बांटा था। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। मनुस्य की औसत आयु सौ वर्ष मानी गयी है। पहले पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करो। फिर पचास वर्ष की आयु तक गृहस्थ का आनन्द भोगो, कामनाओं की तृप्ति करो फिर काम को प्रेम में परिवर्तित कर दो। पचास से पचहत्तर वर्ष की आयु तक आधा गृहस्थ रहो और आधा परलोक की तरफ ध्यान दो। पत्नी साथ रहे, कोई हर्ज

नहीं। महाराज जी कहते थे कि साठ साल के बूढ़े हो जाने पर भी लोग पत्नी के साथ सोते हैं, शर्म नहीं आती उन्हें! मैंने उनसे कहा—"महाराज जो हम तो अमी भी साथ सोते हैं लेकिन हमारा काम का सम्बन्ध नहीं है।" कहने लगे, "तेरी बात और है; मैं मानता हूं तू योगी है; तूने ठीक समय से शादी की।" मैं महाराज जी की बात की पुष्टि कर रहा हूं। महाराज जी ने यह बिलकुल ठीक कहा कि लाखों लोग सन्तमत की तरफ मारे-मारे फिर रहे हैं। नामदान ले लेते हैं फिर भी दुःखी रहते हैं। देखा है कि लोगों को नामदान की तरफ आकर्षित करने के लिए तरह-तरह की भयानक, रोचक, भ्रामक बातें कही जाती हैं। यह बिलकुल गलत है। मैं मानता हूं यह ठीक है कि मनुष्य योनि सब योनियों से श्रेष्ठ है, क्योंकि मनुष्य के चोले में ही रहकर मालिक से योग किया जा सकता है, देवता की योनि में रहकर नहीं। परा भक्ति का मार्ग मनुष्य के लिए है। लेकिन इस बात पर बहुत ज्यादा जोर देकर अधिक से अधिक अनधिकारी लोगों को नाम-दान देना ठीक नहीं है। लाखों लोग नाम तो ले लेते हैं और कहते हैं कि उन्होंने मांस-मदिरा छोड़ दिया है। लेकिन चोरी छुपे खाते पीते रहते हैं। इससे क्या लाभ हो सकता है? अगर सचमुच सन्तमत इतना लोकप्रिय है कि लाखों लोग नामदान ले रहे हैं, तो शराब और मांस की इतनी ज्यादा दुकानें क्यों खुलती जा रही हैं? एक तरफ तो लोगों को त्याग का उपदेश देकर परिवार से छुड़ाया जा रहा है दूसरी तरफ उन्हें डेरों और आश्रमों में फंसाया जा रहा है। जिधर लोगों को ले

ले जाना चाहिए, उसका उलटा असर हो रहा है इससे क्या लाभ हो सकता है ? नाम की कमाई ! नाम की कमाई !! इस पर बड़ा जोर है। लेकिन मैं नो एक को भी नहीं देखता जिसे यह पता हो कि नाम क्या वस्तु है। इसीलिए महाराज जी बार-बार कहते थे कि भाई लोगों का रास्ता विराग का नहीं है। उरा कर या बहका कर नामदान दे देने से विराग नहीं होता। मैंने बड़े-बड़े नाम वाले देखे हैं, जो बड़े-बड़े से टर और सत्संग भी चलाते हैं, मगर क्रोधी, दम्भी, लोभी, व्यभिचारी और संसार को धोखा देने वाले हैं। जहां यह कहा जाता है कि वेदों के पढ़ने से कुछ फायदा नहीं होता। ठीक है, मैं भी कहता हूं कि वेद पढ़ने से कुछ लाभ नहीं लेकिन वेद पर अमल करने से अवश्य लाभ होता है। जिन्होंने अपना ब्रह्मचर्य खोया हुआ है, या जिनका वैवाहिक जीवन मन मुताबिक नहीं हुआ, वे भक्ति की तरफ भागते हैं। लेकिन मैं तो पांच वर्ष की उम्र से ही मालिक से लौ लगाता रहा हूं, ब्रह्मचर्य का सवाल ही नहीं पैदा होता। महाराज जी कह रहे थे अज्ञान की भक्ति टूट जाती है। लेकिन मेरी उस समय भी अज्ञान की भक्ति नहीं थी। बड़े आनन्द का अनुभव होता था। भक्ति गलत नहीं है, परन्तु यह जानना जरूरी है कि तुम्हारा भक्ति की तरफ आने का कारण क्या है, एक ही चीज एक आदमी के लिए जहर और दूसरे के लिए अमृत होती है। महाराज जी ने खुद मुझे कहा तुम्हारा एक पलंग पर सोना तेरे लिए हानिकारक नहीं है क्योंकि तू योगी है, लेकिन औरों के लिए हानिकारक है। हमारे यहां यह विधान है कि व्यक्ति पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर शरीर की पुष्टि

करे। चार पुरुषार्थ हैं :--अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। हमें चारों को अपनाना है। धन कमाना भी जरूरी है। धन होगा तभी तो अच्छा भोजन भी खा सकोगे। ऋषियों ने अपने अनुभव के आधार पर यह व्यवस्था दी है। पहले पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रह कर शिक्षा में विशेषज्ञता लेना जरूरी है। इससे व्यक्ति धन कमाने के योग्य बनेगा। उसका और उसके परिवार का पोषण होगा। अगर कोई व्यक्ति पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य नहीं रख सका तो निश्चय नहीं कि वह सौ साल तक जियेगा या नहीं ब्रह्मचर्य पालन से किसी दूसरे को नहीं, बल्कि खुद अपने आपको फ़ायदा पहुंचाना है। मैं बहुत हद तक देखता हूं कि पश्चिमीय देशों में काफ़ी सुख के साधन, पैसा, सब कुछ है, शरीर से भी लोग लम्बे-चौड़े होते हैं, लेकिन मानसिक दृष्टि से दुःखी हैं। इसका कारण भी ब्रह्मचर्य की गिरावट ही है। तो अर्थ के साथ ब्रह्मचर्य जरूरी है। पश्चिम में मनोविज्ञानिक चिकित्सकों की इस समय चांदी है। उनके पास मानसिक रोगियों की भीड़ रहती है। महाराज जी को तो दातादयाल जी ने कहा था कि वह दो जहान का पीर है : अर्थात् शरीर और मन से पूर्ण है। मैं स्वयं शरीर और मन का पीर रहा हूं। मैं मनोविज्ञान पढ़ाता था और मुझ चिकित्सक का प्रमान पत्र मिला हुआ था। मैं मन की चिकित्सा कर सकता था। महाराज जी ने अपने अनुभव के आधार पर यह बात कही थी जब तक शरीर पुष्ट और नीरोग नहीं होगा, तब तक नम भी ठीक नहीं रह सकता। मैं यह बता रहा हूं कि यह बात हमारे वेदों में मौजूद है। पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य

में रह कर शिक्षा ग्रहण करना अर्थ और काम की तुष्टि के लिए आवश्यक हैं। शरीर और मन का गहरा सम्बन्ध है। आदमी जब बूढ़ा होता है, उसके अन्दर कुछ परिवर्तन आते हैं, उसके खून में कुछ ऐसे तत्व आते हैं जिससे उसे क्रोध अधिक आता है। वह शक्कीमिजाज़ हो जाता है। यह मनोविज्ञान की खोज है। दूसरी तरफ अगर मन संतुष्ट नहीं है, तो शरीर पर असर आ जाता है और जब वह ईर्ष्या करता है तो उसे अलसर का रोग लग जाता है। क्रोध से कई तरह की बीमारियां लग जाती हैं। मन और शरीर परस्पर जुड़े हुए हैं। शरीर का असर मन पर, और मन का शरीर पर होता है 'जैसा अन्न, वैसा मन।' जैसा भोजन आप खायेंगे वैसा आपका मन बनेगा। इसलिए शराब पीना निषिद्ध है क्योंकि शरीर और मन दोनों पर ही उसका बुरा असर पड़ता है। यह नहीं कि शराब पीना पाप है। औषधियों में शराब दी जाती है, वह बुरी नहीं है। लेकिन शराब पाने से काम की प्रवृत्ति बढ़ जाती है, मांस और शराब से अधिक वासना जागती है। महात्मा गांधी तो कहते थे कि दूध भी नहीं पीना चाहिए। उन्होंने दूध भी छोड़ दिया था।

महाराज जी ने शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य का नारा दिया है, मन का इलाज गृहस्थ आश्रम में रहकर काम की तृप्ति करते हुए, काम के रूप को प्रेम में परिवर्तित कर देना है। विवाह केवल बच्चे पैदा करने के लिए नहीं होता। मैं यह समझता हूं कि कामवासना को शुद्ध प्रेम में बदल देना चाहिए।

जितने बड़े 2 सन्त-महात्मा हुए हैं, युवावस्था में वे बहुत कामी थे। लेकिन उन्होंने जब अपनी कामवासना को मालिक के प्रेम में बदल दिया तभी उन्होंने जगत् का कल्याण किया। काम का मतलब केवल वासना नहीं है :

'काम कान सब कोई कहे,
काम न चीन्हे कोय ।
जेती मन की कामना,
काम कहावे सोय ।

अगर आप के पास धन है, बुद्धि हैं और योग्यता हैं तो आप सभी कामनाओं को पूरा कर सकते हैं। लेकिन सभी कामनाओं को पूरा करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। आप कामनाओं को जितना बढ़ाते जाओगे, वे उतनी ही बढ़ती जायेंगी, इसलिए कुछ को भोग लो, बाकी को त्याग दो। इसकी सीमा आपको खुद अपने आप ही लगानी हैं। महाराज जी कहा करते थे कि मन में बड़ी भारी शक्ति है। मन को जिस तरफ आप लगा देंगे, उधर ही वह सफलता की पराष्ठा पर पहुंच जायेगा। महाराज जी ने क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि पर नियन्त्रण रखते हुए मन को केवल प्रेम में लगाने के लिए कहा है। उन्होंने बताया कि जिस घर में प्रेम नहीं है वहां सदा कलह और वैमनस्य है, वहाँ नरक का जीवन है। इसलिये कहा गया है :

'कोमल-चित्त दया मन धारो।'

इस शर्त को पूरा न करने के कारण ही बहुत लोग दुःखी हैं। जिन सत्संगियों को पहले यह नहीं बताया

जाता कि भई पहले अपना मन शुद्ध करो, शुद्ध संकल्प रखो तब परमार्थ में लगो' और नामदान दे दिया जाता है, उनके लिए नाम जहर हो जाता है। नाम क्या है ? नामदान की भक्ति और कमाई क्या है ? अपने अंतर में मालिक का सुमिरन, ध्यान और भजन नाम की कमाई है। मन को ठहराने के लिए यह जरूरी है। मन विकृत और चंचल होता है। जिसके कारण मनुष्य की शक्ति क्षीण हो जाती है। जब मन हजारों तरफ ध्यान देता है, हजारों समस्याओं की तरफ बिखरा हुआ है, तो उसकी ताकत जाया हो जाती है। इसलिए उस ताकत को मुत्तहिद करने के लिए, उसे इकट्ठा करने के लिए, इधर-उधर भटकते हुए ध्यान को एक केन्द्र पर लाने के लिए, नाम का सुमिरिन दिया जाता है। सुमिरन उस नाम का करना चाहिए जो सद्गुरु आप को दे। नाम के सुमिरन से मन की शक्ति इकट्ठी हो कर बढ़ जाती है। लेकिन सुमिरन के साथ हो उसके अन्दर एक मकसद होना चाहिए। आप क्यों मन इकट्ठा कर रहे हैं ? महाराज जी कहते हैं, "सुमिरन से जब तुम्हारा मन इकट्ठा हो जाये और उसमें गुरु की मूर्ति बन जाये या प्रकाश आ जाये, तब जिस उद्देश्य के लिए तुम सुमिरन में बैठे हो, उसको मन में रखो।" यह एक बड़ी बात महाराज जी ने बताई है। सब लोग तो यही कहते हैं कि मालिक से केवल भक्ति मांगनी चाहिए, और कुछ नहीं। जैनमत, बौद्धमत वाले कहते हैं, कि ध्यान करते समय अपने मन को बिल्कुल खाली कर दो। उन्हें यह नहीं मालूम कि अगर ध्यान में, मन को बिल्कुल खोलो कर दिया जाए तो उसमें दुनिया के अच्छे-बुरे सभी विचार आ जाते हैं। अगर किसी

उद्देश्य के बिना कोई सुमिरन, ध्यान, भजन जो साधना करता है और अगर उसके अचेतन मन के अन्दर काम है तो वह ज़बरदस्त कामी हो जायेगा। इसीलिए ऋषियों ने गृहस्थ आश्रम रखा है। गृहस्थ में रहकर काम की तृप्ति के बाद जब व्यक्ति का काम शुद्ध प्रेम में बदल दिया जाता है, तब जाकर तीसरी अवस्था वानप्रस्थ में वह मालिक की तरफ लगता है और फिर चौथी अवस्था-सन्यास में पूर्ण विराग आता है। इसलिए ये जो चार आश्रम हैं बिलकुल ठीक हैं। जो बिना उद्देश्य के सुमिरन, ध्यान, भजन करते हैं, उन्हें यह पता नहीं होता कि यह किस लिए करते हैं। वे समझते हैं कि सुमिरन, ध्यान, भजन से उन्हें मोक्ष मिल जायेगा और वे स्वर्ग में चले जायगे। लेकिन जो लोग नाम लेने के लिए जाते हैं, क्या वे जन्म-मरन से मुक्ति पाने के लिए जाते हैं? नहीं। इसीलिए वे नाम के सुमिरन से बहुत दुःखी हो जाते हैं। मेरे पास कितने ही लोग आते हैं जो नाम के सुमिरन, ध्यान और भजन से अत्यन्त दुःखी हैं। इसलिए आपको कहा जाता है कि जब आप शुभ-संकल्प के साथ उद्देश्य सामने रख कर सुमिरन, ध्यान, भजन करेंगे, तब आपका लोक और परलोक दोनों बन जायेंगे।

अमेरिका में बौद्धधर्म बहुत लोकप्रिय है। खासतौर से जो बौद्ध समाधि-ध्यान सिखाते हैं, उनकी वहाँ बड़ी मान्यता है। उनमें से एक ज़ेन बौद्धिज्म है। इस पर पुस्तकें भी बहुत लिखी गई हैं। उनके गुरु काले कपड़े पहनते हैं। लोगों को बिठा देते हैं और उनको कहते हैं "अपना मन बिलकुल खाली कर दो।" ऐसा करने से कई लोग तो रोने लगते हैं, और कई चिल्लाने लगते हैं, क्योंकि

उनका अचेतन मन खुल जाता है और वे स्वयं बिना किसी उद्देश्य के होते हैं। एक बार जब मैं अजमेर में सत्संग दे रहा था, तो नानकचन्द नाम के एक व्यास के सत्संगी और उनकी धर्मपत्नी बैठे थे उनकी धर्मपत्नी मेरी तरफ ध्यान लगाकर देख रही थी। कुछ ही देर में वह चिल्लाने और सिर हिलाने लगी। ऐसा क्यों हुआ ? बिना किसी मकसद के ध्यान, जब एक तरफ लगाया जाता है और मन खाली हो जाता है तो उसका अचेतन मन खुल जाता है। लेकिन यह समाधि की अवस्था नहीं होती दिल्ली में एक बार एक आध्यात्मिक कान्फ्रेन्स में टाट बाबा नाम के एक गुरु मुझे मिले। सन् 1985 की घटना है। टाट बाबा ने वहां सारे कान्फ्रेन्स में आए हुए लोगों को समाधि लगवानी शुरू कर दी हज़ारों की संख्या में लोग बैठे थे। उनमें कई लोग रोने लगे, कई चिल्लाने लग पड़े। इस प्रकार कोई समाधि नहीं लगाई जाती बल्कि यह मूर्खता है।

मनुष्य के मन के अन्दर बड़ी भारी शक्ति है। यह शक्ति उसे ऊपर भी उठाती है और तबाह भी कर देती है। इस शक्ति का सदुपयोग करने के लिए, मन की शुद्धि बहुत ही जरूरी है। मन की शुद्धि शिवसंकल्प से होती है। सबसे पहले आप अपने घरों में प्रेम और शान्ति रखें ताकि आपका मन समाधि ध्यान के लिए तैयार हो जाए। गृहस्थ आश्रम में, सहज ही उस मालिक को मिलने की तैयारी होती रहती है। ब्रह्मचर्य से शरीर और मन को पुष्टि होती है महाराज जी ने मानसिक ब्रह्मचर्य पर जोर दिया है। जोजस

क्राइस्ट ने भी इस पर जोर दिया है। उन्होंने अपने शिष्यों को बताया "जो यह कहता है कि शरीर से ही गलता करना पाप होता है, यह गलत कहता है। अगर तुम्हारा मानसिक ब्रह्मचर्य गिर गया तो तुमने पाप कर दिया, चाहे शरीर से पाप हुआ या नहीं।" पाप मनुष्य के व्यक्तित्व को ही गिरा देता है। अगर शारीरिक ब्रह्मचर्य खोने वाला व्यक्ति अशान्त रहता है, तो मानसिक ब्रह्मचर्य खोने वाला बहुत ज्यादा अशान्त रहता है, क्योंकि शरीर को बनिस्बत मन की शक्ति ज्यादा होती है। शरीर की गिराबट तो अच्छी खुराक लेने से ठीक हो जायेगी, लेकिन मानसिक गिराबट बहुत दिनों तक बनी रहती है। ऐसी घटनायें हो जाती हैं जिससे कि मानसिक ब्रह्मचर्य गिरने का बुरा नतीजा भुगतना पड़ता है। जो कार्म हम मन से करते हैं, उसका असर ज्यादा गहरा होता है। महाराज जी ने कई बार मिसाल देकर समझाया है कि तुम्हारे स्वप्न के विचार जब तुम्हारे शरीर पर असर डालते है तो जाग्रत में, जो विचार तुम अपने मन में रखोगे, उनका बड़ा ही गहरा असर तुम्हारे शरीर और व्यक्तित्व पर पड़ता है। यह बिलकुल वैज्ञानिक बात है। लोगों को पता नहीं होता, मगर एक क्षण के लिए भी यदि आपने मानसिक दृष्टि से किसी को हानि की बात की तो उसका बड़ा बुरा असर आपके व्यक्तित्व पर पड़ेगा। खासकर अगर कोई व्यक्ति परमार्थ के मार्ग पर चल रहा है तो उसके लिए बहुत ही घातक होगा। इसीलिए कहा जाता है कि गुरु की निन्दा सुनना भी पाप है। पाप कोई बाहर से नहीं आता, बल्कि

पाप तब होता है जब कि तुम्हारा मन गन्दा होता है। और ऐसे गन्दे मन को सुधारने के लिए काफी समय लग जाएगा। महाराज जी कहते थे कि पुराणों के अनुसार जो स्त्री स्वप्न में भी अपने पति से चढ़ती है, वह अवश्य विधवा होगी। तो जो आदमी गुरु के प्रति दुर्भावना रखेगा, उसका परिणाम तो अवश्य ही भयंकर होगा। परमार्थ का रास्ता बहुत आसान भी है, और मुश्किल भी है। इस रास्ते पर मनुष्य पूरा नहीं उतरता। इसलिए महाराज जी ने बार-बार ज़ोर देकर मन को शुद्ध रखने के लिए कहा है। यह आम बात है कि दूसरों की निन्दा लोग बड़े मज़े से सुनते हैं। लेकिन परमार्थ के रास्ते में चलने वाले को निन्दा सुनना बहुत ही नुकसान पहुंचाता है। इसलिए गुरु की तो क्या, किसी की भी निन्दा या किसी पर लांछन लगाने की बात सुनना भी बुरा है। हां सन्त की बात और है। सन्तों के लिए अच्छाई-बुराई, निन्दा-स्तुति है ही नहीं, क्योंकि वे इन दोनों से ऊपर होते हैं, उनका मन संयमित रहता है। इसलिए मैं महाराज जी की बात को अपने अनुभव के आधार पर पुष्ट करता हूं कि सत्संगी के लिए मानसिक ब्रह्मचर्य, शिवसंकल्प रखना, ईर्ष्या-द्वेष, निन्दा-स्तुति, काम, क्रोध, लोभ, मोह-आदि से बचा कैसे रहा जा सकता है? क्या वैराग्य से? सन्यास से? नहीं, यह मार्ग कठिन है। सबके लिए गृहस्थी और दुनिया को छोड़ना सम्भव नहीं और ज़रूरी भी नहीं। त्याग की भावना गृहस्थ में रहते हुए भी हो सकती है। तुम गृहस्थ में रहते हुए भी विराग में रह

सकते हो अगर काम को प्रेम में परिवर्तित कर दिया जाय तो। शर्त यह है कि तुम्हारा मन मालिक पर टिका हुआ होना चाहिए :

'हाथ कार वल, ते दिल यार वल !'

यह कैसे होगा ? एक किसी निर्बन्ध पुरुष को अपनी खोपड़ी में रखने से। बिलकुल आसान है यह। किसी निर्बन्ध पुरुष को अपना आदर्श बना लो और उससे प्रेम करो। इससे क्या होगा ? जब आप निःस्वार्थ प्रेम करोगे तो आपका मन हमेशा पवित्र-शुद्ध रहेगा। हां मन में अपने सुधार का ख्याल होना चाहिए। और जब आप गुरु से प्रेम करोगे तो प्रेम की शर्त है देना ही देना, लेना कुछ नहीं। प्रेम की शर्त कुर्बानी करना। यह प्रेम परा भक्ति है। इससे क्या होता है ? जब शिष्य कहते हैं कि हम नहीं हैं, गुरु है तो उनका मन पवित्र-विशुद्ध हो जात है। वे अहंकार से खाली हो जाते हैं। और ज्यों ही मन अहंकार से खाली हुआ कि मालिक खुद उसकी पूर्ति कर देता है। यही कुदरत का नियम है। यहां खाली होता है, वहीं पूर्ति होती है, जहां बहुत गर्मी होती है, वहीं बादल खिंच कर आ जाते हैं। महाराज जी कहते थे : 'अज्ञान को भक्ति करने वालों को भी फायदा पहुंचता है। उनका काम तो हो जाता है। हम कुछ नहीं करते !' जब मन खाली हो जाता है, वह शिष्य कहता है कि मैं नहीं गुरु ही करेगा, तो उसकी जरूरत पूरी हो जाती है। सत्संग में भी जो खाली होकर बैठता है, वह भर दिया जाता है। मांग और पूर्ति का कानून काम

करता है। अज्ञान को भक्ति से ही ज्ञान की भक्ति आ जाती है। अज्ञान ही नहीं होगा तो ज्ञान कैसे आयेगा ?

,ज्ञान का अज्ञानियों को ही सदा अधिकार है।
पापियों ही के लिए जग सन्त का अवतार है।।'

बल्कि जो अपने को ज्ञानी समझता है वह मूर्ख है। उन बेवकूफ को अज्ञानी हो जाना चाहिए। मैं जब महाराज जी से मिला था तो सब ज्ञान को एक तरफ बालाए-ताक करके गया था, हालांकि कि मुझमें अहंकार का ज्ञान कभी भी नहीं था। आम तौर पर जो प्रोफैसर एम. ए., पीएच. डी. होते हैं उनमें एक अकड़ होती है। छात्रों के साथ वे बड़ी सख्ती करते हैं। यह उनके अहंकार की निशानी है। लेकिन मैंने अपनी प्रोफैसरी के ज्ञान को बालाए-ताक रखा और अपने आप को उस ज्ञान से हटा कर बिलकुल रिक्त कर दिया, तब महाराज जी के सम्पर्क में आकर मुझे सत्य ज्ञान परा भक्ति हासिल हुई। यह मेरे अन्तस् की मांग थी। जब महाराज जी का रूप मेरे अन्तर में प्रकट हुआ था 1959 में, वह मेरे अन्तर की मांग थी मुझे पूर्णता कैसे प्राप्त हुई ? इसके लिए अन्दर से खाली होना पड़ता है। जब तक कोई रिक्त नहीं होता तब तक वह पूर्ण नही हो सकता। जब अज्ञान की भक्ति से सांसारिक वस्तुओं की पूर्ति हो जाती है, तो ज्ञान की भक्ति से क्या नहीं मिल सकता ! यह सब तुम्हारे ही मन को शक्ति और विश्वास से होता है। जब तुम्हारे मन की शक्ति तुम्हारा लोक बना सकती

तो अगर तुम्हें परलोक हासिल करना है तो मालिक से प्रेम करो, परमतत्व का इष्ट रखो। परमतत्व सुख-दुःख लाभ-हानि, जय-पराजय, निन्दा-स्तुति आदि सब से ऊपर है। और जिसको तुमने आदर्श धारण किया है उसमें कमी या ऐब मत देखो। उसे निन्दा-स्तुति की दृष्टि से मत देखो। तुम अपने आदर्श को अपने मुताबिक अपने निचले धरातल पर मत खींचो, बल्कि अपने आप को गुरु के आदर्श के मुताबिक ढाल दो। यही है पराभक्ति का मतलब और यही सन्तमत की विशेषता है। लेकिन मन को शुद्ध किए बिना और आदर्श से प्रेम किए बिना कुछ लाभ नहीं होता। लाभ कब होता है? अपने आदर्श इष्ट को सर्वेसर्वा मानकर सब कुछ उसी को अर्पण कर दो :—

"पहले दाता शिष्य भया,
जिन तन मन अरपा शीश।
पीछे दाता गुरु भये,
जिन नाम दिया बख्शीश॥"

नाम का अधिकारी कौन है? जिसने सब कुछ गुरु को समर्पित कर दिया! तब गुरु उसे सच्चा रास्ता, सच्चा भेद बता देता है, इसलिए नहीं कि उसने तन, मन, शीश दिया। गुरु को तुम्हारे तन की जरूरत नहीं, तुम्हारे मन की दरकार नहीं। उसका आतम मन दरुस्त और शुद्ध है। अगर गुरु का तन और मन सन्तुलित, शुद्ध नहीं

तो वह गुरु नहीं है। यह तो पारमार्थिक गुरु की बात है। मैं सच कहता हूं कि मैं अपने अध्यापन काल में एक बहुत सफल अध्यापक रहा हूं। हालांकि में मानता हूं उसमें भी मेरे पूर्वजन्मों के आध्यात्मिक संस्कार थे। मैंने अपने जीवन में कभी किसी शिष्य का अहित नहीं चाहा, करना तो दूर की बात है। शिष्य तो बेचारे अबोध असहाय होते हैं। अगर इनका अहित करते हैं तो वे अध्यापक अध्यापक नहीं हैं। मैं बिलकुल ठीक कहता हूं। आज तक मैंने किसी शिष्य का अहित नहीं किया। लेकिन मैं देखता हूं कि अध्यापक शिष्यों से ईर्ष्या द्वेष रखते हैं, उनसे नाजायज काम लेते हैं। जो अपने शिष्यों का दिल से भला नहीं चाहते वह अध्यापक अध्यापक होने के योग्य नहीं हैं।

यह निश्चित है क जब आप सद्गुरु के प्रति सच्ची निष्ठा और प्यार की भावना रखते हैं तो सद्गुरु को तन आपके तन, मन, धन की जरूरत नहीं नहीं है। वह तो पूर्णधनी है। हम तो आपसे पैसा भी चाहते, महाराज जी भी नहीं चाहते थे। हां, इस केन्द्र के लिए लोग अपने आप देते हैं, जिससे जीवों की भलाई होती है। गुरु को देना जरूर चाहिए मगर क्या? उसे अपने लिए किसी प्रकार की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन जिस जगत् कल्याण के काम में वह लगा हुआ है अगर आप उसे जरूरी और फायदामन्द समझते हैं तो उसके काम में सहयोग अवश्य दें। लेकिन गुरु आपको जो राज देगा, जो रास्ता बताएगा, वह इस देन लेन

को रावज़ नहीं बल्कि उसकी दया, करुणा और प्रेम जो आपके प्रति उमड़ेगी वह आपको गुरु की बख्शीश है। अगर तन मन और शीष अर्पित करने से भी आपको सच्चा गुरु मिल जाए तो समझिए आपके बड़े भाग्य हैं :--

'शीष दिये जो गुरु मिले,
तो भी सस्ता जान।'

आज के सत्संग के लिए इतना काफी है।

सब को राधास्वामी।

फ़कीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट सुतैहरी रोड, होशियारपुर को दिया धन आयकर अधिनियम की धारा 80-G I/T. ऐक्ट 1961 के अन्तर्गत, आयकर आयुक्त के पत्र क्रमांक JUDL/TRUST/1-F3264 दिनांक 19-7-94 द्वारा 31-3-1999 तक आयकरसे मुक्त है।

श्रद्धा और विश्वास

परमसन्त परमदयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

लड़का माता का दामन (पल्ला) पकड़े हुये चला जा रहा है. मां चारों ओर से उसे देख रही है। वह आंखें बन्द कर लेता है। मां जानती तक नहीं कि उसकी आंखे बन्द हैं। वह चला जा रहा है। मां समय-समय पर उसे सहारा दे रही है। भूमि ऊंची नीची आ गई, रास्ते में पत्थर का ढेला है। मां झटपट उसे सम्भाल लेती हैं। वह गिरने नहीं पाता। गिरे भी क्यों कर क्योंकि एक तीव्र प्रेम की शक्ति उसकी रक्षा कर रही है। यह नहीं हो सकता कि उसकी आंख किसी और तरफ जायें। बच्चे के ध्यान की रस्सी मां के दिल से लगी हुई है बेशक जन्म के समय नाभि की नाल काट दी गई परन्तु ख्यालो तौर मे वह अब भी उस के साथ जुड़ी हुई है। बच्चा प्रकट रूप में चाहे कितना अनजान हो, मां को उस की ओर से असावधानी नहीं। बच्चे का अनजानपन भी केवल बाह्य ही है। असल में वह स्वप्न में भी मां को नहीं भूलता। शेर आये, सांप आए, बुरे भले आदमी आयें

वह धाम से कूद कर मां की गोद में चला जाता है। वह इस बात का ज्ञान नहीं रखता कि मां उस से अधिक शक्तिशाली भी है या नहीं? इससे उसे कोई सम्बन्ध नहीं। वह मां की कमजोरी और शक्ति के ख्याल को अपने पास तक नहीं फटकने देता। वह मां का हैं और मां उस की है। उस को बुद्धि की सीमा बस इतनी ही है। इस से आगे न वह बढ़ता है न बढ़ना चाहता है। उस में मां का विश्वास कुछ इस तरह का है जिस की व्याख्या आज दिन तक न किसी ने की है न हो सकती है।

जो ईश्वर के प्यारे हैं उन का भी यही हाल हैं। वे पुत्र हैं और ईश्वर उनकी मां है। सुख में, दुःख में बच्चे की तरह वे जब दौड़ते हैं ईश्वर ही की तरफ दौड़ते हैं। कोई पृथ्वी या आकाश की शक्ति उनके ध्यान को अपनी ओर नहीं खींच सकती। बच्चे के शरीर में फोड़ा है। मां चीरा दिलाना चाहती है। बच्चा डरता जरूर है नश्तर लगाने वाले से घबराता है। यह भी सम्भव है कि वह जानता हो कि मां जबरदस्ती चीरा दिला रही है। परन्तु वह उससे दूर नहीं भागता, उसी की गोद में चिपटा रहता है। चीरा लग गया, उसे दुःख हुआ, परन्तु क्या उसके दिल में तनिक भी माँ की ओर अप्रसन्नता या असन्तुष्टिआई? नहीं! राम-राम कहो! यहां असन्तुष्टि आ भी कैसे सकती हैं? यदि नश्तर जान लेना सिद्ध हो तब भी मरते-मरते बच्चा मां की गोद को नहीं छोड़ता। उसकी दुनिया वही है। उसके ध्यान का केन्द्र मां की गोद है। इसी प्रकार भक्त जन उस अपार माता की गोद में

रात-दिन खेलते हुए बिलास करते हैं और आपत्ति के समय उसी की गोद से चिमटे हुए प्राण त्याग देते हैं परन्तु उसे नहीं त्यागते ।

ऐ सच्चे बच्चे ! तू आध्यात्मिक दुनिया का महान व सच्चा शिक्षक है । तुझ से बढ़िया आज तक किसी ने विश्वास का प्रभावशाली पाठ नहीं सिखाया। नमस्कार हैं तुझ को। तू गुरु का रूप है। बच्चे की सादगी में भी किस प्रकार की सुन्दरता है। मां उसे मारती है। वह भी झुंझला झुंझला कर अपने नन्हें-नन्हें हाथों से उसे मारता जाता है, साथ-साथ रोता भी जाता है। मां ने खूब मारा। परन्तु क्या कोई व्यक्ति उकसा कर बच्चे को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है ? ऐसा न कभी आंखों देखा न कानों सुना । बच्चे ने कब अपनी मां का साथ छोड़ा और मां ने कब अपने बच्चे का साथ छोड़ा। बच्चे की श्रद्धा अटल है और अमिट है, वह टूट नहीं सकती । वह अपने ख्याल की धारों से मां को अपनी ओर मतवज्जह [आकर्षित] रखने का भेद जानता है। हजार कोई उसे खिलाए पिलाए, वह मां की तरह कैसे किसी और के साथ एक जानन हो सकता है, क्योंकि वह बात जो माता और उसके मध्य है और स्थान पर उसका पता नहीं । बनावट प्यार बनावटी होता है। वास्तविक और प्राकृतिक प्रेम और ही प्रभाव रखता है।

बच्चे को सफाई और गन्दगी की समझ नहीं। वही कीचड़ में यदि लथ-पथ हो गया, रोने लगा। मां ने आज नया रेशमी वस्त्र पहना हुआ था, उसका ख्याल नहीं,

झटपट बच्चे को गोद में उठा लिया। उन में इतनी शान्ति कहां कि बच्चे को साफ करके वह गोद में ले। इन बच्चों की ख्यालो शक्ति बहुत ही प्रबल होती है। जो व्यक्ति इनके साथ उठने बैठने लगता है, अपना रूप भूल जाया करता है। बूढ़ा भी बच्चों की संगति में बच्चा बन जाता है और बच्चों जैसा बातें करने लगता है। यदि माँ पर बच्चे की तीव्र विचार शक्ति का प्रभाव पड़ता है तो आश्चर्य क्या है? बच्चे ने उस के दिल के पर्दों में प्रभावशाली कलम से लिख 'रखा हैं कि तेरे सिवा मेरा कोई नहीं' और मां भी क्यों न सिद्ध कर दिखाए कि 'मेरे सिवा तेरा कोई नहीं।"

तुम भी आध्यात्मिक संसार में मालिक के बच्चे बनो और उसके दिल पर अंकित कर दो कि--'तेरे सिवा मेरा कोई नहीं' और वह भी सच्ची माँ बन कर दिखा देगा 'मेरे सिवा तेरा कोई नहीं।' अकेला हाथ नहीं बजता, दोनों हाथ मिलते हैं तब ध्वनि निकलती है। तुम जैसे होगे, वैसा ही तुम्हारा मालिक होगा। तुम जिस तरह उस के साथ व्यवहार करोगे, वह भी तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार करेगा।

-क्रमशः

नारायणदास डोगरा
परमदयाल सर्वहितकारी मानवता मन्दिर,
फ़कीरधाम, सरड़ डोगरी, बरास्ता रक्कड़, ज़िला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश

योग विज्ञान

जीवन-सरिता में संयोग-वियोग की उत्ताल तरंगों के थपेड़ों की चोट खाते मानव को, देर-सबेर, जब भी होश आती है, उसे बोध हो जाता है कि संयोग-सुख अति श्रमसाध्य, महंगा और क्षणिक है, और यह कि बड़ा से बड़ी कीमत चुका कर भी इसकी क्षणिक मिठास को अधिक देर सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। बल्कि, इसके विपरीत, वियोग-दुःख की दुसह पीड़ा और कड़वाहट की अपरिहार्य दुर्दशा से अपने आप को कोई बचा नहीं सकता। अनुभव और विवेक मानव को जल्द इस नतीजे पर पहुंचा देते हैं कि संयोग-वियोग की इस द्वंद्वात्मक दशा से उबरने के लिए उसे किसी ऐसी कूटस्थ अवस्था की खोज अवश्य करनी होगी जहां जीवन द्वंद्वों के अभिशाप से नितान्त मुक्त और परिपूर्ण हो। आदि सन्त सद्गुरु कबीर इस तथ्य को अपने एक शब्दों में मार्मिकता से दर्शाते हैं :

तन धर सुखिया कोई न देखा,
जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त को बात कहत हैं,
सबका किया विवेका हो॥
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया,

क्या गिरही बैरागी हो।
शुकदेव अचारज दुख के डर से,
गर्भ से माया त्यागी हो॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया,
तपसी को दुःख दूना हो।
आशा तृष्णा सब को व्यापे,
कोई महल न सूना हो॥
सांच कहूं तो कोई न माने,
झूठ कहा नहिं जाई हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुखिया,
जिन यह राह चलाई हो॥
अवधू दुखिया भूपति दुखिया,
रंक दुखी विपरीती हो।
कहें कबीर सकल जग दुखिया,
सन्त सुखी मन जीती हो॥

जब त्रिदेवा तक दुःखों से अछूते नहीं बच सके तो बेचारे मानव की क्या बिसात! ऋषियों ने सांसारिक दुःख-सुख से परे कूटस्थ अवस्था को खोज का यत्न किया। सन्तों ने आकर जीवनमुक्त (विदेह) अवस्था के इशारे दिए। वस्तुतः निर्वाण' की खोज का शिव संकल्प लेकर भगवान बुद्ध अवतरित हुए, और अपार सुख-वैभव-परित्याग कर विराग लिया और घनघोर तप-साधन के बल 'निर्वाण' की सिद्धि की।

योग-विज्ञान और अध्यात्म का विकास भी अन्यान्य कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता-संस्कृति आदि की भांति

हो क्रमिक और धीरे-धीरे हुआ। स्थायी सुख शांति की खोज की यह गाथा वर्षों, शतियों और युगों पुरानी नहीं बल्कि अनादि-अखंड है जिसका इतिवृत्त किताबों के पन्नों पर नहीं, आकाश, सूरज, चांद और सितारों में अंकित है। मानव को शारीरिक दुःखों, मानसिक चिन्ताओं और जन्म-मरण के आत्यिक भय से सदा सर्वदा के लिए मुक्ति दिला कर परमसुख-शांति और अमरत्व प्रदान करने के निमित्त भारतीय ऋषि-गुरु परम्परा ने अनादि काल से अनवरत तपस्या, साधना और शोध द्वारा अनेकानेक योग विधियाँ विकसित कीं। इनमें पाँच प्रमुख और प्रचलित है :

1) हठ योग
2) राज योग
3) आनन्द योग
4) शब्द योग
5) सहज योग। यह योग पंचक मानव अस्तित्व के पांच भागों.. (3 सगुण+2 निर्गुण) के सिद्धान्त पर आधारित हैं जिसकी तालिका निम्नवत है :

1.	हठ योग	स्थूल	शारीरिक	तमोगुण प्रधान
2.	राज योग	सूक्ष्म	मानसिक	रजोगुण प्रधान
3.	आनन्द योग	कारण	आत्मिक	सतोगुण प्रधान
4.	शब्द योग	महा कारण	विशुद्धात्मिक (सुरत्यात्मक)	निर्गुण नाम प्रधान
5.	सहज योग	कारणातीत	निरत्यात्मिक	अनाम निर्गुण प्रधान

× इनके अतिरिक्त जो योग विधियां हैं वे गौण और इनमें

समाविष्ट हैं।

किसी भी योग की साधना-अभ्यास हमेशा पूर्ण गुरु की हिदायत और देख-रेख में करना आवश्यक है, अन्यथा हानिकारक, खतरनाक और असाध्य रोगों का कारण बन सकता है। उपर्युक्त योग विधियों में सन्तों द्वारा विकसित अधुनातन 'सुरत-शब्द' योग विधि सहज, सम्पूर्ण और निरापद है। प्रथम तीन योग केवल ब्रह्मचारियों के करने योग्य हैं, पर 'सुरत शब्द' योग गृहस्थियों [नर-नारी] और बालकों के लिए भी सुगम हैं। योग-साधना के मार्ग में जो सबसे बड़ी रुकावट और बाधक तत्व है, वह हैं मन। विधाता की सृष्टि में मानव-मन एक विलक्षण रचना है जिसे, उसकी महा चंचलता के कारण, वश में रखना यदि असम्भव नहीं तो महा कठिन अवश्य है। आदि संत सद्गुरु कबीर की यह वाणी विशेष ग़ौरतलब है :

जगत में काहू न मन वश कीन्हा।
श्रिंगी ऋषि से बन में लूटे,
विषय विकार न जाने!
पठई नारि भूप दशरथ ने,
पकरि अयोध्या आने॥
सूखे पत्र पवन भषि रहते,
पाराशर से ज्ञानी।
भरमे रूप देख बनिता को,
काम कदला जानी॥

सुरपति जाकी नारि शची सी,
निशदिन ही संग राखी ।
गौतम के घर छली अहिल्या,
निगम कहत हैं साखी ।।
पार्वती सी पत्नी जाके,
ता का मन क्यों डोले ।
खलित भए छवि देख मोहनी,
हा हा करके बोले।।
एके नाल कंवलसुत ब्रह्मा,
जग उपराज कहाबे ।
कहें कबीर इक मन जीते बिन,
जीव आराम न पावे ।।

मन को बश में रखना मनुश्य के लिए महा कठिन, बल्कि असम्भव है; इस असम्भव को सम्भव और मुश्किल को आसान केवल गुरु-कृपा से ही किया जा सकता है। कैसे ? सत्संग में गुरु से गुरु-ज्ञान लेकर, और उनसे 'सुरत शब्द' योग विधि सीख कर, साधना-अभ्यास द्वारा उसे सिद्ध कर। इसे गुरु-उपदेश और नाम मंत्र की दीक्षा भी कहते हैं।

'मंत्र मूलं गुरु वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरु कृपा।'

गुरु द्वारा दिए गए 'नाम-मंत्र' में गुरु तत्व के अजर, अमर और अविनाशीपने का संस्कार मौजूद रहता है, गुरु के शुभ भाव, हित और तप की अलौकिक शक्ति होती है जो शिष्य को गुरु के देश ले जाती है।

देश कौन सा है ? कहाँ है ? गुरु का देश अलख धाम, अगम धाम, अनामी, अकाल देश, परम धाम, दयाल धाम और राधास्वामी धाम हैं। यह तीन लोकों से परे, चौथे लोक में है। यह चौथा पद है।

,तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा।
सतनाम सतगुरु गति चीन्हा॥'
'नाम रहे चाथे पद माहीं।
जग खोजे तिरलोकी माहीं॥'

'सार वचन', स्वामी जी

शब्द योग को 'सुरत-शब्द' योग भी कहते हैं। जगत् को यह सन्तों की विशेष देन है। प्रथम तीन योग [हठ, राज और आनन्द] क्रमशः शारीरिक, मानसिक और आत्मिक के स्थूल, सूक्ष्म और कारण प्रकृति तक ही सीमित होने के कारण जीव को चौथे पद, जो काल और माया से परे है, तक नहीं पहुंचा सकते। चौथा पद प्राप्त हुए बिना जीव जन्म-मरण और आवागमन के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता। इस कारण 'सुरत-शब्द योग की महिमा विशेष है। शब्द आकाश का सहज धर्म है, इस लिए शब्द योगी साधना द्वारा सहज ही शब्द लोक में पहुंच जाता है। 'शब्द' सर्वव्यापक है, अतः शब्द योग की सिद्धि से जीव सहज ही सर्वव्यापकता को प्राप्त होता है और जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है। सुरत शब्द योग विधि के तीन सोपान हैं: सुमिरन, ध्यान और भजन। साधक को इसके अभ्यास के लिए 'तीन बन्द' लगाने होते हैं।

'चश्म बन्दो गोश बन्दो लब बन्द।
गर न बीनी सिर्र हक़ बरमन ब खंद ॥'

'तीन बन्द लगाय कर, सुन अनहद टनकोर।
नानक सुन्न समाध में, नहीं सांझ नहिं भोर ॥'

अभ्यास का आरम्भ अष्टांग विधि से करते हैं। इसमें यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारण और समाधि हैं। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर, शौचादि से निवृत्त हो कर, साधन स्थल पर निश्चिन्त अचिंत मन से अभ्यास में बैठते हैं। स्थल स्वच्छ। शान्त एकान्त होना चाहिए जहाँ किसी प्रकार के विघ्न बाधा की सम्भावना न हो, बन्द कमरा हो तो बेहतर। कमरे में केवल आराध्य इष्ट देव की प्रतिमा या फोटो होनी चाहिए। गो यह अनिवार्य नहीं, शुरू में सहायक होता है।

वाह्य अभ्यंतर शौच्य कर्म ही यम है। शरीर-मन से शुचि शुद्ध होकर, तीन बन्द लगाकर अभ्यास में बैठना ही नियम है। आसन तीन प्रकार के हैं: पद्मासन, कुक्कुटासन और सुखासन। अपनी सुविधानुसार कोई एक चुन लेना चाहिए। साधना के समय शारीरिक या मानसिक किसी प्रकार का तनाव नहीं होना चाहिए। यह प्रेम और भक्ति का मार्ग है। भक्ति और प्रेम को मुख्य रख, शेष सब गौण करें।

'साहब के दरबार में केवल भक्ति प्यार।'

चन्द मिनट पूरक, कुम्भक और रोचक क्रम से प्राणायाम

करना चाहिए। इसकी विधि गुरु के सम्मुख बैठकर सीख लेनी चाहिए। फिर एकाग्र चित से गुरु द्वारा दिए गए 'नाम मंत्र' का सुमिरन श्रद्धा और प्रेम के साथ करना चाहिए। नाम मंत्र को दो भागों में कर अर्ध्व-अधर स्वांसों द्वारा मन में उच्चारण करना चाहिए। स्वांस की गति लम्बी-लम्बी रखनी चाहिए जितनी आराम से हो सके। इसे अजपा और प्रणव कहते हैं। सुमिरन में जिह्वा नहीं बल्कि प्राण से काम लेते हैं। प्राण-धारा चिदाकाश तक जाती है। इसलिए प्रणव द्वारा सुरत भी एकाग्र हो कर चिदाकश में चढ़ जाती है। इसमें अधिक श्रम नहीं करना होता। यह सहज प्रक्रिया है। सुमिरन की एकाग्रता से गुरु रूप का ध्यान अनायास होता है। इष्ट का ध्यान भी प्रेम और भक्ति सहित करना चाहिए।

'ध्यान मूलं गुरुर्मूर्ति, पूजा मूल गुरु पदम्।
मंत्र मूलं गुरुर्वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरु कृपा॥'

संत मत और सूफ़ी मत प्रेम का पंथ है। दोनों में कोई अन्तर नहीं। तसव्वुफ़ के असूल के मुताबिक :

हक़ीक़ी इश्क को इश्क़ मजाज़ी पहली मंज़िल है।
चलो ए ज़ाहिदो सूए ख़ुदा कूए बुतां हो कर॥

अन्तर तो कहीं भी नहीं है। समझे का मत एक है। सभी मतों में सगुण उपासना को अहमियत दी गई है। सगण की उपासना किए बगैर निर्गुण उपासना येमानी, व्यर्थ और असम्भव है। गुरु शिष्य को प्रेमपन्थ में दीक्षित करता है। प्रेम में अपार अलौकिक शक्ति निहित होती है। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो संसार में प्रेम के

अलावा और कुछ है भी नहीं। प्रेम परमेश्वर का स्वरूप है।

प्रेम प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं॥
उठा बगूला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनसे जा मिला, जिनका तिनके पास॥
यह तत् वह तत् एक है, एक प्रान दो गात।
अपने जिय से जानिये, उनके जिय की बात॥
जहां प्रेम तहां नेम नहि, प्रेम न बुधि व्योहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथि वार॥
प्रेम भाव इक चाहिये, प्रेम न भेष बनाय।
भावे घर में बास कर, भावे बन में जाय॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दरवेश।
बिना प्रेम पहुंचे नहीं, दुर्लभ पिय का देश॥
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खडग, देखा सुना न कान॥
प्रेम रसायन अधिक रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवन कठिन है, मांगे शीश कलाल॥
यह रस महंगा सो पिये, छाड़े मोह परान।
शीश दिए जो पी मिले, तो भी सस्ता जान॥
जब तक मरने से उरे, तब तक प्रेमी नाहिं।
बहुत कठिन है प्रेम घर, समझ लेहु मन माहिं॥
प्रेम पियाला जो पिए, सीस दक्षिणा देय।

लोभी सोस न दे सके, नाम प्रेम का लेय ।।
कबीर प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय ।
रोम रोम में रम रहा, और अमल क्या खाय ।।
लाली अपने लाल को, जित दाखे तित लाल ।
लाली देखन जो गयो, आप भी हो गई लाल ।।

प्रेम परमेश्वर है और परमेश्वर प्रेम है। प्रियतम प्रेमी है और प्रेमी प्रियतम है। फ़क़ केवल तन, मन और आत्मा का है। इस मोह-भ्रम के फ़र्क़ को मिटाने के लिए गुरु शिष्य को शब्द योग के तीन सोपान-सुमिरन, ध्यान और भजन - से गुज़ार कर इष्ट पद (अभेद अवस्था) पर पहुंचा देता है। प्रेमी योगी जब अपने आराध्य इष्ट का सुमिरन ध्यान करता हुआ प्रेम में डूब जाता है, सुरत अपने आप अनायास चिदाकाश पर चढ़ जाती है और समाधि लग जाती है।

'कबीर काया समुंद है, अन्त न पावे कोय ।
मिरतक होके जो रहे, मानिक पावे सोय ।
डुबकी मारी समुद में, निकला जाय अकास ।
गगन मंडल में घर किया, होरा पाया दास ।।
जीने से मरना भला, जो मरना जाने कोय ।
मौत से पहले जो मरे, अजर अमर सो होय ।।
जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द ।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द ।।'

सुमिरन से ध्यान, और ध्यान से प्रकाश की अवस्था

आ जाती है। प्रकाश शब्द में और शब्द पर आधारित है। अतः साधक शब्द में लीन हो कर समाधि अवस्था को प्राप्त होता है। शब्द का सुनना ही भजन है। सुमिरन, ध्यान और भजन, यह तीन अवस्थायें त्रिकुटी, शून्य और महाशून्य की हैं जिनमें विभिन्न प्रकार की शब्द ध्वनियां साधक सुनता है। जिस तरह मन्दिर देवालयों में संध्या आरती होते समय, घंटे, शंख पखावज, तानपुरा आदि की ध्वनियां सुनाई देती हैं, वैसी ही ध्वनियां साधक को अभ्यास में भी सुनाई देती हैं। यह बाहर की ध्वनियाँ अन्तर की ध्वनियों की ही नकल हैं। बाहरी ध्वनि सुनना बाहरी भजन, और आन्तरिक ध्वनि सुनना आन्तरिक भजन है। पांच नाम अन्तर की पांच ध्वनियाँ हैं। प्रायः मन्दिरों में चार कोनों पर चार छोटे गुम्बद और मध्य में एक विशाल गुम्बद होते हैं। यह आन्तरिक पांच मण्डलों : सहसार, त्रिकुटी, शून्य, महाशून्य और भंवरगुफा की प्रतिकृति और वास्तुकरण है। आन्तरिक ध्वनियों [शब्द] का श्रवण ही 'श्रुति' है जिसे वेद कहते हैं। शब्द आकाश का सहज धर्म है। शब्द ही ज्ञान-विज्ञान का जनक है। आकाशी शब्द के श्रवण से ही 'श्रुति' [वेद] की व्युत्पत्ति हुई। ऋषियों और वैज्ञानिकों ने चिदाकाश में समाधिस्थ हो कर वेदों की खोज की और बाद में जगत् कल्याण के के निमित्त उसे पृथ्वी पर उतारा। गंगावतरण इसी प्रक्रिया का प्रतीक है। स्वामी जी महाराज ने 'पंचम वेद' का संकेत दिया जो गुप्त है। कबीर साहिब की वाणी है :

'जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, वाको काल न खाय॥'

सन्तों ने जाप को निकृष्ट कहा और साधक को अजपा से शुरू करा कर आगे चलाया। जाप स्थूल है, अजपा सूक्ष्म, और 'अनहद' साधक को नाम या सत् नाम के मण्डल में ले जाता है, बशर्ते कि साधक को पूर्ण सतगुरु का सत्संग प्राप्त हो। अनहद 'सोहं' शब्द है जिसे वेणु-संगीत या मोहन श्री कृष्ण की मुरली की ध्वनि कहते हैं, जिस ध्वनि की मोहनी शक्ति से तीन लोकों को अपने वश कर रखा है।

मुरलिया बाज रही,
कोई सुनै सन्त धर ध्यान।
सो मुरली गुरु मोहिं सुनाई,
लगी प्रेम की बान।
पिंड छोड अण्ड तज भागी,
सुनी अधर में अपूर्व तान।
पाय शब्द मिली हंसन से,
खैंच चढ़ाई सुरत कमान।
यह बंशी सतनाम बंस की,
किया अजर घर अमृत पान।
भंवर गुफा ढिग सोहं वंशी,
रीझ रही मैं सुन सुन कान।
इस मुरली का मर्म पिछानो,
मिली शब्द की खान।
गई सुरत खोला वह द्वारा।
पहुंची निज अस्थान॥

सतपुरुष धुन बीन सुनाई,
अद्भुत जिनकी शान ।
जिन जिन सुनी आन यह बंशी,
दूर किया सब मन का मान।
सुरत सम्हारत निरत निहारत,
पाय गई अब नाम निशान।
अलख अगम और राधास्वामी,
खेल रही अब उस मैदान।

सुरत-शब्द योग वस्तुतः योग विज्ञान का सिरमौर है जो जीव को माया, काल और आवागमन के बन्धनों से छुड़ा कर उसे इष्ट पद परधाम पहुंचाता है। इस परम यात्रा में सुरत का वाहन 'शब्द' है जिसका गुप्त भेद सद्गुरु देते हैं। इसलिए इसे 'सुरत-शब्द योग' कहते हैं। 'शब्द' को साधारण संसारी जीव नहीं सुन सकते, जब तक सद्गुरु की कृपा न हो।

'बज रही तुमड़िया भाई रे।
जगत के लोग सुनन नहि पावें, सतगुरु देत सुनाई रे।'

सद्गुरु सत्संग के बचनों से सत्संगी को क्रमशः साधु, हंस, और संत गति प्रदान करते हैं, तभी वह आन्तरिक शब्द सुनने के योग्य होता है। सत्संग में सत्संगी की तवज्जह सद्गुरु के रूप और बचनों पर इकटक टिकी होती है। यह बाहरी सुरत-शब्द योग है जिसके अभ्यास से सत्संगी में आन्तरिक सुरत-शब्द योग के अभ्यास की शक्ति पैदा होती है। उसे सद्गुरु के प्रेम स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता

है और सच्चा भक्ति भाव जाग्रत हो जाता है। तन, मन आत्मा का मोह त्याग कर सुरत अपना शब्द स्वरूप पहचान लेती है। सोहं की अनहद नाद उसे ऊपर उठा कर शब्द के अनन्त सागर से मिला देती है। वह चौथे पद का वासी हो जाता है जो काल से परे है। अहं का झीना परदा नष्ट हो जाता है और सुरत निर्मल अमल होकर निरत रूप हो रहती है। समाधि विसमाधि हो जाती है। उसे निज स्वरूप और जात का पता चल जाता है। निरत को अपने अजर, अमर, अविनाशी होने का अनुभव बोध हो जाता है और वह परमतत्व के उस महासागर में मिली रहती है जो अनन्त अगाध है।

अकह अपार अगाध अनामी।
अस मेरे प्यारे राधास्वामी॥

दास शब्दानन्द

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
परमसन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर ।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु जो को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥

BOOK POST

Regd No. 26265/74 OCT 10th 1994

MANAV MANDIR PB HSP—5

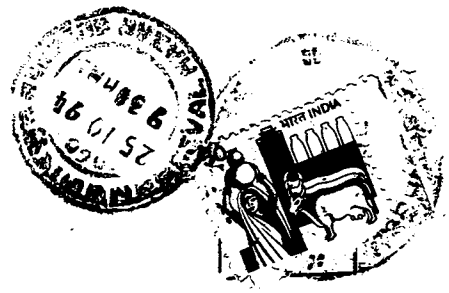

Address

2681. Thakur Bahadur Singh,
H.No. 4-7-90/Kumarpalli, H/E
Post. Hanamkonda, PINJRA
Distt. Warangal (A.P)

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD PHONE : 22639
HOSHIARPUR 146001

Shiv Dev Rao press Manavta Mandir Hoshiarpur (pb.)